GISI Impact Factor 0.2310
जुलाई-अगस्त 2015
वर्ष - 9 अंक - 4
ISSN 0973-9777
ijraeditor@yahoo.in

भारतीय शोध पत्रिका

आन्वीक्षिकी

मासद्वयी अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका

www.anvikshikijournal.com

प्रकाशन
एम.पी.ए.एस.वी.ओ. द्वारा आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित
अन्य सहसंयोजन
सार्कः अन्तर्राष्ट्रीय शोध-पत्रिका
एशियन जर्नल ऑफ मार्डन एण्ड आयुर्वेदिक मेडिकल साइंस
वाराणसी, उ०प्र० (भारत)

MPASVO

जुलाई-अगस्त २०१५ वर्ष-९ अंक-४

आन्वीक्षिकी

भारतीय शोध पत्रिका

मासद्वयी अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका

प्रधान सम्पादिका

डॉ. मनीषा शुक्ला,maneeshashukla76@rediffmail.com

पुनर्निरीक्षक संपादक

प्रो. विभा रानी दुबे, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी, उ.प्र.,भारत

डॉ. नागेन्द्र नारायण मिश्र, इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद,उ.प्र.,भारत

प्रो. उमेश चंद्र दुबे, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, उ. प्र.,भारत

सम्पादक

डॉ. महेन्द्र शुक्ल, डॉ. अंशुमाला मिश्रा

सम्पादक मण्डल

डॉ. सारिका त्रिपाठी, डॉ. मुन्नी देवी भास्कर, डॉ. प्रमोद आनंद तिवारी, डॉ. प्रमोद यादव, डॉ. कृष्ण कुमार तिवारी, डॉ. आरती बंसल, डॉ. अर्चना शर्मा, डॉ. आभा रानी, डॉ. कन्हैया, डॉ. अंजली बंसल गोयल, डॉ. शरदेंदू बाली, डॉ. डी. पी. सिंह, डॉ. गीता जोशी, डॉ. रूपाली जैन, डॉ. किरन कुमारी, डॉ. मधुलिका, डॉ. नीलू कुमारी, डॉ. मनीषा आमटे, डॉ. सिद्धार्थ पाण्डेय, डॉ. मनोज कुमार राय, दिनेश मीणा, गुंजन, रमेश चन्द, शंकर, पायल, इन्दरजोत कौर, सिद्धनाथ पाण्डेय, राघवेन्द्र सिंह, आनन्द मोहन, मौसमी कुमारी, देवाशीष पाण्डेय, अमर नाथ, मधुलिका सिन्हा, मोहम्मद अज़फर हसनैन, सन्तोष कुमार, चन्द्रशेखर, प्रो. अंजली श्रीवास्तव

अन्तर्राष्ट्रीय सलाहकार मण्डल

रेव डोडामगोडा सुमनासार (श्रीलंका), वेन केन्डागेले सुमनारांसी थेरो (श्रीलंका), रेव टी धम्मारतना (श्रीलंका), पी.त्रिराची सोडामा (श्रीलंका), फ्रा च्युतिदेश सैन्सोम्बट (बैंकाक,थाईलैंड), फ्रा बूनसर्मस्त्रिथा (थाईलैंड), डॉ. सीताराम बहादुर थापा (नेपाल), मोहम्मद सौरजाई (जाबोल, ईरान), माजिद करीमजादेह (ईराक), डॉ. अहमद रेजा केईखाय फरजानेह (जाहेडान, ईरान), मोहम्मद जारेई (जाहेडान, ईरान), मोहम्मद मोजटाबा केयाहफरजानेह (जाहेडान, ईरान), डॉ. होसैन जेनाबदी (सिस्तान एवं बलूचिस्तान, ईरान), मोहम्मद जावेद केयाह फरजानेह (जाबोल, ईरान)

प्रबन्धक

महेश्वर शुक्ल,maheshwar.shukla@rediffmail.com

सारांश एवं सूचीपत्र

मोतीलाल बनारसीदास सूचीपत्र वाराणसी, मोतीलाल बनारसीदास सूचीपत्र दिल्ली, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय पत्रिका सूचीपत्र वाराणसी, सेन्ट्रल न्यूज एजेंसी सूचीपत्र दिल्ली, डी.के.पब्लिकेशन सूचीपत्र दिल्ली, नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ साइंस कम्यूनिकेशन एण्ड इन्फारमेशन रिसोर्स सूचीपत्र दिल्ली, नोएडा कॉलेज ऑफ फिज़िकल एजुकेशन सूचीपत्र गौतमबुद्ध नगर

पाठकों से

आन्वीक्षिकी,भारतीय शोध पत्रिका प्रत्येक दो माह (जनवरी, मार्च, मई, जुलाई, सितम्बर एवं नवम्बर) पर एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण वाराणसी उ.प्र. भारत द्वारा प्रकाशित की जाती है। एक वर्ष में आन्वीक्षिकी,भारतीय शोध पत्रिका 6 भाग हिन्दी एवं 6 भाग अंग्रेजी एवं 3 अतिरिक्तांकों के भाग में प्रकाशित की जाती है। डॉक खर्च दर के सम्बन्ध में जानकारी हेतु सम्पर्क करें।

वार्षिक पाठक मूल्य दर

संस्थागत एवं व्यक्तिगत : भारतीय 5000+1000/-डाक शुल्क, एक प्रति 1200+100/- डाक शुल्क, वैदेशिक : 6000+डाक खर्च, एक प्रति 1000+डाक शुल्क

विज्ञापन एवं निवेदन

विज्ञापन के संदर्भ में जानकारी प्राप्त करने हेतु प्रधान सम्पादिका के पते पर संपर्क करें। आन्वीक्षिकी एक स्ववित्तपोषित पत्रिका है,अत: किसी भी प्रकार का आर्थिक सहयोग सराहनीय होगा। कृपया अपनी सहयोग राशि चेक अथवा ड्राफ्ट के माध्यम से निम्नलिखित पते पर प्रेषित करें।

सभी पत्राचार निम्नलिखित पते पर ही प्रेषित करें-

बी.32/16 ए. 2/1,गोपालकुंज,नरिया,लंका वाराणसी उ.प्र. भारत,पिन कोड 221005 मोबाइल नं. 09935784387,

टेलीफोन नं. 0542-2310539.,E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com,www.anvikshikijournal.com

मिलने का समय : 3-5 दिन में(रविवार अवकाश)

पत्रिका संयोजन : महेश्वर शुक्ल,maheshwar.shukla@rediffmail.com

प्रकाशन :एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण

प्रकाशन तिथि : 1 जुलाई 2015

मनीषा प्रकाशन

(पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/ 2007-2008 बी.32/16 ए. 2/1,गोपालकुंज,नरिया, लंका वाराणसी उ.प्र. भारत)

आन्वीक्षिकी

भारतीय शोध पत्रिका

वर्ष-9 अंक-4 जुलाई-2015

शोध प्रपत्र

महाविद्यालयी छात्र/ छात्रों में नशे की बढ़ती प्रवृत्ति एक अध्ययन
(नगर पंचायत हथगाँव के महाविद्यालय के संदर्भ में) -राजकुमार साहू एवं डॉ. श्रद्धा गिरोलकर 1-3

उपनिषदों में नारी : ब्रह्मविद्या के विशेष संदर्भ में -डॉ. मनीषा शुक्ला 13-16
वैदिक प्रार्थनाओं का महत्व -डॉ. स्मिता द्विवेदी 17-19

विशिष्टाद्वैत वेदान्त में वर्णित शरणागति का स्वरुप -प्रदीप नारायण शुक्ल 20-22
इक्कीसवीं सदी के हिन्दी साहित्य में नारी चेतना (महिला उपन्यासकारों के विशेष संदर्भ में) -डॉ. प्रभा दीक्षित 23-26

आज के सवाल पर कवि की पीड़ा (काव्य संग्रह "पीड़ा" के विशेष संदर्भ में) -डॉ. पी. सी. घृतलहरे 27-31
समकालीन चुनौतियाँ और नागार्जुन की कवितायें -डॉ. विजय कुमार 32-34

व्यंग्य : उत्पत्ति एवं परिभाषा -डॉ. रमेश टण्डन 39-45
बाजार के प्रतिपक्ष की कविता : 21वीं सदी की कविता -डॉ. राधा वर्मा 46-52

मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र एक सरल अध्ययन -डॉ. प्रभा दीक्षित 53-56
काव्य में श्लेष अलंकार का महत्व -डॉ. मंजु वर्मा 57-60

पूर्व मध्य काल में सूती वस्त्र उद्योग -डॉ. सुम्बुला फिरदौस 61-63
प्राचीन भारत में स्त्रियों का सम्पत्ति पर अधिकार -जिज्ञासा 64-66

"महात्मा गाँधी एवं आचार्य विनोवा भावे के शैक्षिक दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन -
श्री जय प्रकाश नारायण एवं डॉ. नरेन्द्र कुमार चौरसिया 67-71

सम्पूर्ण व्यक्तित्व विकास में शिक्षा की भूमिका -डॉ. धर्मेन्द्र शुक्ल 77-80
श्री अरविन्द के दार्शनिक विचारों का वर्तमान भारतीय शैक्षिक परिदृश्य में प्रासंगिकता का अध्ययन -
डॉ. नरेन्द्र कुमार चौरसिया एवं श्री जय प्रकाश नारायण 90-94

कचरे का प्रबंधन जरूरी है -प्रो. अंजली श्रीवास्तव 95-98

प्रिंट ISSN 0973-9777, वेबसाइट ISSN 0973-9777

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) 9,1-3
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 03 मई 2015

महाविद्यालयी छात्र/ छात्रों में नशे की बढ़ती प्रवृत्ति एक अध्ययन (नगर पंचायत हथगाँव के महाविद्यालय के संदर्भ में)

राजकुमार साहू* एवं डॉ. श्रद्धा गिरोलकर**

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *महाविद्यालयी छात्र/ छात्रों में नशे की बढ़ती प्रवृत्ति एक अध्ययन (नगर पंचायत हथगाँव के महाविद्यालय के संदर्भ में)* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखक *राजकुमार साहू एवं श्रद्धा गिरोलकर* घोषणा करते हैं कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेते हैं, क्योंकि हमने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देते हैं। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह हमारी मौलिक कृति है। हम शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देते हैं। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देते हैं।

भारतीय समाज में सुरा एवं सोमरस पान का उल्लेख साहित्यों में उपलब्ध हैं। सोमरस को स्फूर्ति प्रेरणा और शक्ति का स्रोत कहा गया है। विभिन्न प्राचीन हिन्दू धर्म ग्रंथो, साहित्यों, पुराणों आदि में सुरापान/ मदिरापान की घोर निन्दा की गयी है।

मद्यपान सामाजिक विघटन का एक रूप है। प्रत्येक समाज में किसी न किसी प्रकार से नशे के रूप में मदिरापान का सेवन किया जाता है। कुछ समाजों में इसे बुरा आवश्यक रूप में ग्रहण किया जाता है। गरीब लोग ठर्रा-ताड़ी, देशी शराब तथा धनी लोग व्हिस्की, रम सोलन, स्कॉच और अन्य बढ़िया से बढ़िया शराब के साथ धूम्रपानों का भी सेवन करते हैं। आधुनिकता निरन्तर बदलाव की प्रक्रिया में है, इस बदलाव की प्रक्रिया ने समाज में कई नई परिस्थितियों को जन्म दिया है, जिससे नई-नई चुनौतियाँ उभर समाज में दिखने लगी है। परिवर्तन की प्रक्रिया में युवा वर्ग एक आधार है, जिसकी भूमिका अग्रणी है। तेजी से बदलते भारतीय युवा प्रमुखतः विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में पढ़ने वाले छात्रों की जीवन शैली में एकाएक परिवर्तन हुआ है और इस परिवर्तन के परिणामस्वरूप युवा वर्ग में इतना खुलापन ला दिया कि उन्हें सामाजिक मूल्यों, परम्पराओं, संस्कारों एवं संस्कृतियों से कोसो दूर ले जाकर अंधेरी गलियों में पटक दिया है। समाज में प्रमुख्यत युवा वर्ग अपने जीवन काल में दो प्रकार से नशे का सेवन करता है- (1) मद्यपान एवं (2) मादक द्रव्य।

मद्यपान (Alcoholism)- साधारण शब्दों में मद्यपान का आशय शराब का सेवन करने से है तथा जो व्यक्ति शराब सेवन करता है, उसे मद्यसेवी कहते हैं। कुछ व्यक्ति यह मानते हैं कि मद्यपान का अर्थ अधिक मात्रा में शराब का सेवन करना है। इसी सम्बन्ध में इलिएट एवं मैरिल का विचार है कि जो व्यक्ति कभी-कभी, नियमित कम मात्रा में शराब का सेवन करता है उसे मद्यपान या शराबी नहीं कह सकते हैं।[1]

फेयर चाइल्ड, ''शराब पीने की असमान्य तथा बुरी आदत ही मद्यपान है।''[2]

* शोधकर्ता [एम.फिल.]
** विभागाध्यक्ष [समाजशास्त्र विभाग], शास. दू. ब. महिला स्नात. महाविद्यालय रायपुर (छत्तीसगढ़) भारत

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

मादक द्रव्य- व्यसन यह एक ऐसी दशा है जिसमें किसी नशीले पदार्थ का सेवन करने से व्यक्ति उसका इतना अधिक अभ्यस्त हो जाता है कि उसका उपयोग किये बिना वह नहीं रह सकता।

मादक द्रव्य उन नशीली दवाओं और पदार्थों से है जिनका उपयोग करने से व्यक्ति कुछ समय के लिए उत्तेजना, प्रसन्नता और शक्ति का अनुभव करता है।

मैमोरिया[3]- ''मादक द्रव्य-व्यसन देशी अथवा रासायनिक पदार्थों से बनी उन मादक वस्तुओं के सेवन पर होने वाली निर्भरता है जो एक आदत के रूप में व्यक्ति के जीवन को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करती रहती है।''

भारत में स्वतंत्रता से पूर्व तक मद्यपान एक मादक द्रव्य की समस्या इतनी गंभीर नहीं थी। कुछ धार्मिक अवसरों पर जनसंख्या का एक बहुत छोटा भाग, भाँग, बीड़ी, सिगरेट, पान-मशाला आदि का उपयोग करता था अथवा कुछ वर्गों में ताड़ी के उपयोग, समाज के शासक वर्ग तथा इस वर्ग के सम्पर्क में रहने वाले सम्भ्रान्त लोगों तक ही सीमित था। स्वतंत्रता के बाद भारत में मद्यपान की समस्या तेजी से बढ़ने लगी और इस बढ़ती नशें की प्रवृत्ति को देखते हुए महात्मा गाँधी जी ने कहा, ''मद्यपान को मैं चोरी और यहाँ तक कि वे वेश्यावृत्ति से भी अधिक बुरा मानता हूँ क्योंकि यह दोनों ही बुराइयाँ नशे से ही पैदा होती है।''[4]

यह सच है कि मद्यपान तथा मादक द्रव्य-व्यसन की प्रकृति एक-दूसरे से कुछ भिन्न है, लेकिन इन दोनों समस्याओं के लिए उत्तरदायी दशाएं अर्थशास्त्री के अनुसार निर्धनता तथा औद्योगीकरण, मनोवैज्ञानिक व्यक्ति की मानसिक दुर्बलता के आधार पर, समाजशास्त्री दूषित सामाजिक-सांस्कृतिक पर्यावरण को मादक पदार्थों के सेवन का सबसे प्रमुख कारण मानते हैं। भारत में इस बढ़ती हुई समस्या का सम्बन्ध प्रमुखतः विभिन्न वर्गों से संबंधित युवा पीढ़ी खास कर विद्यालय एवं महाविद्यालय के छात्र-छात्राओं से हैं।

अध्ययन के उद्देश्य

- महाविद्यालय में अध्ययनरत छात्रों के अन्दर नशे के प्रति लगातार बढ़ते मनो सोच का पता लगाना।
- नशों से लिप्त छात्रों के दुष्परिणामों का अध्ययन करना।
- नशों में लिप्त छात्र एवं छात्राओं में से किसकी संख्या अधिक है, का पता लगाना।
- छात्रों में बढ़ती नशे की प्रवृत्ति को समाप्त करने के लिए संभावित उपाय खोजना।

अध्ययन स्थल एवं अध्ययन पद्धति

अध्ययन स्थल उत्तर प्रदेश राज्य के फतेहपुर जिला के नगर पंचायत हथगांव में स्थिति अभय ग्रुप ऑफ इन्स्टीट्यूशन का महाविद्यालय (ठा. जयनारायण सिंह मेमो. डिग्री कालेज, हथगांव) में क्रमशः बी.टी.सी. प्रशिक्षु, बी.एस.सी. और बी.ए. के समस्त छात्र-छात्राओं का अध्ययन करके वर्तमान नशे के प्रति सोच, दुष्परिणाम आदि का पता लगाना।

वर्तमान सत्र में महाविद्यालय में सभी वर्ग (बी.टी.सी. प्रशिक्षु, बी.एस.सी., बी.ए.) के कुल छात्रा/ छात्राओं की संख्या लगभग 1250 होगी, जिनमें से लगभग 750 छात्राएं एवं 500 छात्र महाविद्यालय में अध्ययनरत हैं। अध्ययन उद्देश्यों का पता लगाने हेतु महाविद्यालय में अध्ययनरत छात्र/ छात्राओं की कुल संख्या के आकार के अनुरूप ''सम्भावना अनुपात'' विधि के आधार पर 20% का चयन किया गया।

कक्षा	कुल संख्या	न्यादर्श हेतु कुल संख्या का 20%
B.T.C.	40	8
B.S.C.	410	82
B.A.	800	162
		250 कुल न्यादर्श का चयन

स्रोत (व्यक्तिगत सर्वेक्षण)

तथ्य संकलन की विधियाँ एवं विश्लेषण

अध्ययन से संबंधित जानकारी प्राप्त करने के लिए ''प्राथमिक विधि' जो कि महाविद्यालय में कार्यरत प्रवक्ता एवं छात्र/ छात्राओं से साक्षात्कार विधिक माध्यम अध्ययन उद्देश्य संबंधी तथ्यों को एकत्रित किया गया।

द्वितीय विधि

तथ्य संकलन हेतु द्वितीय विधि का भी प्रयोग जैसे महाविद्यालय में प्रति वर्ग (बी.टी.सी., बी.एस.सी., बी.ए. की कुल संख्या) आए दिन नशे से लिप्त संबंधी समाचार पत्रों में लेख आदि का भी सहारा लिया गया।

अध्ययन से ज्ञान होता है कि महाविद्यालयीन छात्रों में नशे की बढ़ती प्रवृत्ति कोई नयी नहीं है, अपितु सभी देशों के अधिकांश छात्र/ छात्राएँ नशे में लिप्त है। नशे के प्रयोग का कारण एक दूषित सामाजिक, सांस्कृतिक पर्यावरण है जो युवा तथा किशोर वर्ग में लालसा अनुरूप्ता एवं विचलित मूल्यों को बढ़ाकर उसे नशे की ओर (फिर चाहे मद्यपान हो या मादक द्रव्य) आकर्षित करता है। महाविद्यालय में अध्ययनरत छात्राओं की अपेक्षा छात्र अधिक नशे में लिप्त है। जिसका कारण अधिकांशतः सोच में उभर कर यह आयी कि छात्राओं को समाज का भय एवं आंशिक स्वतंत्रता। महाविद्यालय में अध्ययनरत छात्र जो यूवा वर्ग की श्रेणी में हैं और हो रहे हैं नशे की ओर ज्यादा आकर्षित होते है उन दशाओं का अध्ययन के द्वारा जो मिला वह निम्न है- 1. संगति का प्रभाव, 2. वैयक्तिकरण, 3. निराशापूर्ण जीवन, 4. विलासिता और फैशन, 5. पारिवारिक वातावरण का प्रभाव।

सुझाव

1. छात्र/ छात्राओं के अभिभावक को समय-समय पर उनके मित्रों के बारे में जानकारी लेते रहना चाहिए।
2. अध्यापकों को छात्रों से उनकी समस्याओं के संबंध में खुलकर बातचीत करनी चाहिए।
3. नशे के दुष्परिणाम संबंधी जानकारी प्रचार-प्रसार के माध्यम से एवं महाविद्यालय में नाटक के माध्यम अवगत कराना चाहिए।
4. महाविद्यालयों/ कालेजों में विशेषज्ञों, चिकित्सकों मनोवैज्ञानिकों द्वारा सेमीनार/ संगोष्ठी के माध्यम से छात्र/ छात्राओं को अवगत कराना चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ सूची

[1]इलियर एण्ड मेरिल- *सोशल डिसअर्गनाइजेशन,* पृष्ठ संख्या 184
[2]जे.के.अग्रवाल- *भारतीय समाज मुद्दे एवं समस्याएँ,* पृष्ठ संख्या 213
[3]राम आहुजा- *सामाजिक समस्याएँ,* पृष्ठ संख्या 407
[4]एस.के.ओझा- *वर्तमान भारत में सामाजिक समस्याएँ,* पृष्ठ संख्या 69

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) 9,13-16
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 11 मई 2015

उपनिषदों में नारी : ब्रह्मविद्या के विशेष संदर्भ में

डॉ. मनीषा शुक्ला*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *उपनिषदों में नारी : ब्रह्मविद्या के विशेष संदर्भ में* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *मनीषा शुक्ला* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

भारतवर्ष आध्यात्मिक संपदा में सर्वाधिक सम्पन्न देश है। यही उसकी प्रसिद्धि का एक कारण भी सिद्ध हुआ है; किन्तु जहाँ इसके आध्यात्मिक ज्ञान की सर्वत्र चर्चा होती है, वहाँ अतीत काल के धर्मशास्त्रों में स्त्री को निम्नतर मानने के कारण कड़ी आलोचना भी होती है। यह सत्य है कि भारतीय धर्मग्रंथों में स्त्री को त्याज्य माना गया है, उसे कर्मकाण्ड करने की स्वतंत्रता नहीं दी गई तथा वेदों उपनिषदों के अध्ययन में भी पर्याप्त अधिकार नहीं दिया गया, लेकिन यह भी उतना ही सत्य है कि नारी को महान शक्ति मानकर उसकी उपासना में संलग्न रहने के निर्देश भी इन्हीं धर्मग्रंथों में है।

वस्तुतः हमें इस विषय में अपना दृष्टिकोण बदलना होगा, उसके विषय में अपने विचारों को पुनः संशोधित करना होगा। इसी प्रसंगानुसार हम पण्डित श्रीराम शर्मा 'आचार्य' द्वारा संकलित 108 उपनिषदों के संग्रह में ''ब्रह्मविद्या खण्ड'' का अन्वेषण करना चाहेगें। उक्त खण्ड में 42 उपनिषदों को स्थान दिया गया है। वैसे तो सभी उपनिषदें ब्रह्मविद्या का प्रतिपादन करती हैं किन्तु जिन उपनिषदों में पण्डित श्रीराम शर्मा 'आचार्य' ने इसे मुख्यरूप से एवं ब्रह्मविद्या में अर्हता के लिये सन्यासादि धर्म को पाया उन्हीं उपनिषदों का संकलन ब्रह्मविद्या खण्ड में किया गया है। इस खण्ड में जिन उपनिषदों को स्थान दिया गया है, वे इस प्रकार हैं- 1. अथर्वशिर उपनिषद्, 2. अध्यात्मोपनिषद्, 3. अवधूतोपनिषद्, 4. आत्मपूजोपनिषद्, 5. आत्मबोधोपनिषद्, 6. आत्मोपनिषद्, 7. आरूण्युपनिषद्, 8. अश्वमोपनिषद्, 9. कठरूद्रोपनिषद्, 10. कुण्डिकोपनिषद्, 11. कैवल्योपनिषद्, 12. कौषीतकि ब्राह्मणोपनिषद्, 13. क्षुरिकोपनिषद्, 14. जाबालदर्शनोपनिषद्, 15. जाबालोपनिषद्, 16. जाबाल्युपनिषद्, 17. तुरीयातीतोपनिषद्, 18. द्वयोपनिषद्, 19. नारदपरिव्राजकोपनिषद्, 20. निर्वाणोपनिषद्, 21. पञ्चब्रह्मोपनिषद्, 22. परब्रह्मोपनिषद्, 23. परमहंस परिव्राजकोपनिषद्, 24. परमहंसोपनिषद्, 25. पैङ्गलोपनिषद्, 26. ब्रह्मबिन्दूपनिषद्, 27. ब्रह्मविद्योपनिषद्, 28. ब्रह्मोपनिषद्, 29. भिक्षुकोपनिषद्, 30. मण्डलब्राह्मणेपनिषद्, 31. महावाल्योपनिषद्, 32. मैत्रेरयुपनिषद्, 33. याज्ञवल्क्योपनिषद्, 34. योगतत्त्वोपनिषद्, 35. वज्रसूचिकोपनिषद्, 36. शाट्यायनीयोप-

* प्रधान सम्पादिका, आन्वीक्षिकी पत्रिका, वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

निषद्, 37. शाण्डिल्योपनिषद्, 38. शारीरकोपनिषद्, 39. सन्यासोपनिषद्, 40. सुबालोपनिषद्, 41. स्वसंवेद्योपनिषद्, 42. हंसोपनिषद्।

इन उपनिषदों में से कुछ ही उपनिषदों में नारी-विवेचन विभिन्न दृष्टिकोण से हुआ है जिनका हम क्रमवार विवेचन करेंगे :

नर-नारी भिन्न हैं, असमान नहीं; हंसोपनिषद् में रैक्वऋषि के सृष्टि विषयक प्रश्न पर घोराङ्गिरस कहते हैं कि विराट् हिरण्यगर्भ ने अपने दो भाग किये जिनमें आधे से स्त्री और आधे से पुरूष प्रकट हुआ।[1] यहाँ एक महत्वपूर्ण बात यह है कि स्त्री एवं पुरूष दो भिन्न तत्व हैं जो एक ही विराट् की अभिव्यक्ति हैं। स्त्री एवं पुरूष भिन्न है यह तो निश्चित है किंतु असमान नहीं। भिन्नता एवं असमानता दो अलग बाते हैं, भिन्नता ही स्त्री एवं पुरूष को व्यक्तित्व प्रदान करती है। सदियों से यह भूल होती आई है कि स्त्री को पुरूष से कमतर देखा जाता रहा है किन्तु हमारे धर्मग्रंथों का ऐसा अभिप्राय कदापि नहीं है।

वर्तमान में इसी भिन्नता को असमानता मानकर उसे मिटाने की एक और भूल समाज द्वारा की जा रही है। आज नारी पुरूष होने की प्रतिस्पर्धा में लगी है। वह ठीक पुरूष के समान बनना चाहती है। वस्त्रों, रहन-सहन में पुरूषों जैसा व्यवहार करना चाहती है, लेकिन इसमें भी एक गुलामी है। आवश्यकता इस बात की है कि नारी अपना व्यक्तित्व भिन्न रूप से बनाये तभी वह सशक्त हो सकती है। *अथर्वशिर उपनिषद्* में भी जब देवगण रूद्र से वार्ता करते हैं तब रूद्र कहते हैं कि पुरूष, नपुसंक एवं स्त्री मैं ही हूँ।[2] इसका अभिप्राय भी यही है कि इनमें समान रूप से एक ही तत्व भिन्न-भिन्न रूप से कर्म में प्रवृत्त है। अतः नर एवं नारी में भिन्नता तो मानी जा सकती है कदापि असमानता नहीं।

नारी का शक्तिस्वरूप; नारी को कई धर्मग्रंथों में शक्तिस्वरूपा माना गया है। इन उपनिषदों में भी कुछ ऐसे उदाहरण है जहाँ देवी-शक्ति के रूप में नारी की अराधना हुई है। *कौषीतकिब्राह्मणोपनिषद्* में सोममण्डल की अधिष्ठात्री देवी केरूप में नारी के लिये अराधनावाक्य मिलता है, जिसमें उन्हें सोममण्डल की अधिष्ठात्री मानते हुये अमृत्व पद पर भी अधिकार रखने वाला बताया गया है तथा प्रार्थना की गई है कि आप मुझ पर ऐसी कृपा करें जिससे कि कभी पुत्र के शोक से मुझे व्यथित होकर रोना न पड़े।[3]

अन्य स्थान पर श्री लक्ष्मी जी को ब्रह्मवेता के लिये प्रतिष्ठित ''ओमितौजस'' नामक पर्राङ्ग का आधार बताया गया है।[4] प्रस्तुत प्रसंग में नारी रूप में श्रीलक्ष्मी को सिंहासन का आधार मानकर नारी की महत्ता को ही सिद्ध किया गया है। इसी प्रकार *कौषीतकिब्राह्मणोपनिषद्* में वाग्देवी के रूप में नारी को प्रतिष्ठित करते हुये स्त्रीवाचक नामों को वाणी से ग्रहण करने का सिद्धान्त प्रस्तुत किया है।[5]

नारी एवं नैतिक यौन सम्बन्धी विचार; नैतिक यौनविचार की चर्चा करते समय धर्मग्रंथों का मुख्य केंद्रविषयक स्त्री ही होता है। ये बात और है कि पुरूष भी इस सम्बन्ध में वही भूमिका निभाता है जो कि एक स्त्री की होना चाहिये किन्तु प्रत्येक स्थान पर पुरूष को ही स्त्री से दूर रहने के निर्देश दिये गये हैं जिसमें नारी की देह-निंदा आदि करते हुये उसे त्याज्य बताया जाता है। इस प्रसंग को उपनिषद् ब्रह्म-विद्या काण्ड में भी प्रदर्शित किया गया है।

याज्ञवल्क्योपनिषद् इसी प्रकार से चर्चा करते हुये कहा गया है, ''माँसपाञ्चालिकायास्तु यन्त्रलोकेऽङ्गमञ्चरे। स्नाय्वास्थिग्रन्थिशालिन्याः स्त्रियाः किमिष शोभनम्।।''[6]; अर्थात् मांस-मेदा आदि द्वारा निर्मित यत्र-तत्र गमन करने वाली पिटारी रूप नारी के शरीर में जिसमें कि नसें, हड्डी एवं ग्रंथियाँ ही स्थित है, कौनसी वस्तु शोभनीय है।

यहाँ पर एक वीभत्स्य चित्रण करके पुरूष को नारी से दूर रहने का उपदेश किया गया है। यहाँ तक की स्त्री त्याग को ही संसार त्याग के समकक्ष माना गया है।[7] इस तारतम्य में उपनिषद् में अन्य अनेक उद्धरण दिये गये हैं।[8]

ऊपनिषदों ने नैतिक यौन के ही निर्देश दिये हैं, जिसके अनुसार मनुष्य सर्वविद्याओं का अभ्यास करने के बाद गुरू आज्ञा से अपने कुल के अनुरूप कन्या से विवाह एवं गृहस्थोचित कर्म करे। अपनी स्त्री से ऋतुकाल में ही समागम करने वाले एवं परस्त्री के प्रतिवासनात्मक न रखने वाले को ब्रह्मचारी कहा गया है।[9]

परस्त्री के सम्बन्ध में तो ब्रह्मचारी को अष्ट मैथुन से दूर रहने की आज्ञा है। *कठरूद्रोपनिषद्* में अष्ट मैथुन का नाविवरण प्राप्त होता है जिसमें दर्शन, स्पर्श, क्रिडा, चर्चा, कामतत्वों से सम्बन्धित विषयों की बातचीत, कामसङ्कल्प सम्भोग के लिये प्रयत्न तथा संभोग की क्रिया को सम्मिलित किया गया है।[10] *शारीरकोपनिषद्* में मैथुन को तामसवृत्ति माना गया है[11] एवं स्त्रीसंग को तेलमालिश के सदृश मानकर उससे दूर रहने का निर्देश दिया गया है।[12]

स्त्री-संग से दूर रहने के लिये *योगतत्वोपनिषद्* में जिस तरह से उद्धरण दिया गया है उससे तो एक साधारण व्यक्ति भी अचम्भित हो सकता है। उपनिषद् में कहा गया है कि, ''जिस स्तन से दुग्धपान किया, दूसरी अवस्था में वैसे ही स्तन को दबाकर आनन्दानुभूति करता है। जिस योनि से जन्म लिया या वैसी ही योनि में पुनः रमण किया करता है। एक जन्म में जो माँ होती है वहीं दूसरे जन्म में पत्नी बन जाती है तथा जो पत्नी होती है वह माता बन जाती है।''[13] इन उद्धरणों से व्यक्ति के मन में स्त्रीसंग से विरक्ति कुछ सीमा तक तो सम्भव हो ही जाती है।

यह प्रश्न शेष रह जाता है कि स्त्रीसंग को इतनी गंभीरता से त्याज्य क्यों माना गया है? इसके उत्तर में उपनिषद् कहती है कि जो व्यक्ति स्त्रीसंग न करके दृढ़ निश्चयी होकर निरन्तर करते रहने से वीर्यरक्षण होता है जिससे योगी के शरीर से सुगन्ध आने लगती है अर्थात् वह

अलौकिक शक्ति प्राप्त करता है।[14] यहाँ यह भी ध्यान रखना चाहिये कि यही बातें नारी के प्रति पुरूष के सम्बन्ध में भी समझ लेना चाहिये। नारी भी नैतिक यौन के द्वारा अपने जीवन को उन्नत बना सकती है।

नारी एवं सन्यास धर्म; प्रायः सन्यास धर्म जीवन के अन्तिम-चरण में धारण किया जाता है। इस धर्म में मोह-माया स्वस्त्री एवं बांधवों को त्याग प्रमुख रूप से वर्णित है। ऐसी अवस्था में स्त्रीसंग तो प्रमुखरूप से त्याज्य विषय है। ब्रह्म, ब्रह्मविद्या काण्ड में इस धर्म के विषय में अनेक उद्धरण आते हैं जिसमें से यहाँ हम नारी के संदर्भ में दिये गये उद्धरणों को प्रस्तुत करेंगे।

सन्यास धर्म के अनुरूप आचरण करने वाले व्यक्ति को स्त्री संग से मन वाणी एवं कर्म से दूर रहना चाहिये।[15] इसके अतिरिक्त परिव्राजक होकर घर से बाहर निकलने पर जब पुत्र, पत्नी आदि पिछे गमन करे तो उन्हें देखकर अश्रुपात न करें।[16] यह भी ध्यान देने योग्य है कि साधारणावस्था में स्व पत्नीत्याग करके वन गमन करने से कोई विशेष लाभ नहीं होगा।[17]

सन्यासी को स्त्री एवं शत्रु में भी समान दृष्टि ही रखनी चाहिये।[18] ऐसे ही *नारदपरिव्राजकोपनिषद्* में कहा गया है कि जो सन्यासीधर्मी नवजात बालिका, सोलहवर्षीय युवती एवं शतवर्षीय वृद्धा नारी को समान दृष्टि से देखते हुये अविकारी रहे वह षण्डक नाम से कहा गया है।[19]

इसी प्रकार सन्यास धर्म का वर्णन करते हुये कहा गया है कि वह युवती स्त्री, भोज्य पदार्थ तथा रजस्वला स्त्री की ओर दृष्टिपात न करे।[20] उसे अपनी स्त्री तथा बन्धुओं के शुभ अशुभ समाचारों से भी विचलित नहीं होना चाहिये एवं शुद्र, स्त्री और विधवा से सम्भाषण नहीं करना चाहिये।[21]

प्रस्तुत विवेचन से यह स्पष्ट है कि सन्यासी को निसङ्ग रहते हुये नारी से सर्वथा दूर रहना ही अभीष्ट है। नारी-समाज के लिये यह कोई अपमान की बात नहीं वरन् इस प्रसंग से उनकी आकर्षण शक्ति को अतुलित माना जा सकता है। यह सिद्ध है कि पुरूष से अधिक आकर्षण शक्ति नारी में होती है और उतनी ही संवेदनशील सहनशील भी होती है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि प्राचीन भारतीय समाज में नारी की कदापि अवहेलना नहीं की गई है वरन् उसे शक्तिस्वरूपा मानकर उसके प्रति सम्मानित दृष्टि रखी गई है। तो कुछ भी उसके शरीर के सम्बन्ध में कहा गया है, तो पुरूष का शरीर भी उसी के सदृश है एवं संग से दूर रहने का आदेश दोनों ही पक्षों में समान रूप से आचरणीय है। अतः यह कदापि तर्क संगत नहीं की नारी किसी दृष्टि में पुरूष से हेय है। इसके अतिरिक्त ब्रह्मविद्या काण्ड में भ्रूण-हत्या को महापातक के सदृश मानकर[22] नारी-भ्रूण का भी निषेध किया है। ऐसी दृष्टि में नारी ब्रह्म-विद्याकाण्ड की उपनिषदों में पर्याप्त दृष्टि से सम्मानित कही जा सकती है।

संदर्भ ग्रंथ

108 उपनिषद् (सरल हिन्दी भावार्थ सहित) ब्रह्मविद्याकाण्ड- (सम्पादक) श्री रामशर्मा आचार्य एवं माता भगवती शर्मा, ब्रह्मवर्चस् शान्तिकुंज, हरिद्वार (उत्तरांचल)

स्रोत

[1]हिरण्यज्योतिर्यस्मिन्नयमाधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा। आत्मानं द्विब्धाऽकरोदर्धेन स्त्री अर्धेन पुरूषो देवो भूत्वा।। सुवालोपनिषद्, 2/3

[2]पुमानपुमान् स्त्रियश्चा। अथर्वशिर उपनिषद्, 1

[3]यत्ते सुसीमं हृदयमधि चन्द्रमसिखितं तेनामृतत्वस्येशाने माऽहं पौत्रमधं रूदमिति। कौषीतकि ब्राह्मणेपनिषद्, 2/8

[4]उपश्चीः श्चीरूपबर्हणं तस्मिन्ब्रह्मास्ते तमित्थंवित्पादेनैबाग्र आरोहति। वही, 1/5

[5]केन स्त्रीनामानीति वाचेति। वही, 1/6

[6]याज्ञवल्क्योपनिषद्, 14

[7]स्त्रियं त्यक्तवा जगन्त्यक्तं जगन्त्यक्त्वा सुखी भवेत्। वही, 23

[8]दृष्टव्य याज्ञवल्क्योपनिषद्, 15-22

[9]सर्वविद्याभ्यासं कृत्वा तदनुज्ञया स्वकुलानुरूपामभिमत कन्यां विवाह्य पंचविंशति-वत्सरं गुरूकुलवासंकृत्वाथ गुर्वनुज्ञया गृहस्थो-चितकर्म कुर्वन्।। नारदपरिव्राजकोपनिषद्, 2/1

[10]कायेनवाचा मनसा स्त्रीणां परिविवर्जनम्। ऋतौ भार्या तदा स्वस्य ब्रह्मचर्यं तदुच्यते।। जाबालदर्शनोपनिषद्, 1/13; स्वदारनिरत ऋतुकालाभिगामी सदा परदारवार्जी प्राजापत्यः। आश्वमोपनिषद्, 1

[11]ब्रह्मचर्येण संतिष्ठेदप्रमादेन मस्करी। दर्शनं स्पर्शनं केलिः कीर्तनं गुह्यभाषणम्। संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिवृत्तिरेव च। एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः 1) कठरूद्रोपनिषद्, 7/1

[12]निद्रालस्ये मोहरागौ मैथुनं चौर्यमेव च। एतेगुणास्तामसस्य प्रोच्यन्ते ब्रह्मवादिभिः।। शारीरकोपनिषद्, 11

[13]अभ्यङ्गं स्त्रीसङ्गमिव। नारदपेरिव्राजकोपनिषद्, 7/1

[14]तत्त्वमार्गे यथा दीपो दृश्यते पुरूषोत्तमः। य स्तनः पूर्वपीतस्तं निष्पीड्यमुदमश्नुते। यस्माज्जातो भगात्पूर्वं तस्मिन्नेव भगे रमन्। या माता सा पुनर्भार्या या भार्या मातरेव हि।। योगतत्त्वोपनिषद्, 131-132

[15]वर्जयित्वा स्त्रियाः सङ्गं कुर्यादभ्यासमादशत्। योगिनोऽङ्के सुगन्धश्च जायते बिन्दुधारणात् ।। वही, 62

[16]सुपूत्रमित्रकलत्राप्तबन्धवादीनि स्वध्यायं सर्वकर्माणि संन्यस्य। नारदपरिव्राजकोपनिषद्, 3190; साम्य :- वही, 3/79, परमहंसोपनिषद् 1 और भी द्रष्टव्य- वित्तस्त्रीपराङ्गमुख। परमहंसपरिव्राजकोपनिषद् मंत्र 3ख। मातरं पितरं भार्यां पुत्रान्बन्धुतमुमोदसित्व- सन्यासोपनिषद् 1

[17]तान्येतान्यनुव्रजन्नश्रुयापातयेत्। कठरूद्रोपनिषद्, 2

[18]लोकवद्भार्ययाऽडेसक्तो वनं गच्छति संयतः। संत्यक्तवा संसृतिसुखमनुतिष्ठतिकिं मुधा।। कुण्डिकोपनिषद्, 7

[19]पुत्रे मित्रे कलत्रे च रिपौ स्वात्मनि संततम्। एकरूपं यत्तदार्जवं प्रोच्यते गया।। जाबालदर्शनोपनिषद्, 1/16

[20]अद्यजातां यथा नारी तथा षोडशवार्षिकीम्। शतवर्षां च यो दृष्टवा निर्विकारः स षण्डकः।। नारदपरिव्राजकोपनिषद्, 3/64

[21]न शुद्रस्त्रीपतितोदक्या संभाषणं। वही, 5/20

[22]नटादिप्रेक्षणं धूतं प्रमदासुहृदं तथा। भक्ष्यं भोज्यमुदक्यां च षण’’’’’’’पश्येत्कुदाचन। वही, 3/69

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) 9,17-19
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 18 मई 2014

वैदिक प्रार्थनाओं का महत्व

डॉ. स्मिता द्विवेदी*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *वैदिक प्रार्थनाओं का महत्व* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *स्मिता द्विवेदी* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

वेदत्रयी में ज्ञान, कर्म और उपासना इन तीन मार्गों का निर्देश है। इन्हीं को भक्तिवाद के शब्दों में हम स्तुति, प्रार्थना और उपासना भी कह सकते हैं। इस प्रकार ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद के द्वारा हमें ज्ञान, कर्म, उपासना या स्तुति, प्रार्थना और उपासना इन तीनों का सर्वाङ्गपूर्ण ज्ञान वैदिक ऋषियों ने दिया है। प्रार्थना संतों के, भक्तों के और महात्माओं के जीवन की समृद्धि है, शान्ति है, बल है। वे अपने जीवन की प्रत्येक घड़ी और प्रत्येक पल में प्रार्थना के अगम्य प्रभाव और अपरिमित शक्ति का अनुभव करते हैं। प्रार्थना के निर्मल और शान्त जल में निमग्न करने वालों को जो परमानन्द प्राप्त होता है, उसके सामने संसार का कोई सुख अथवा स्वर्ग के विलास वैभव का कोई आनन्द, कोई बिसात ही नहीं रखता। ''ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्ण-मुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।''[1]

वह सच्चिदानन्दघन परब्रह्म पुरुषोत्तम सब प्रकार से सदा सर्वदा परिपूर्ण है। यह जगत भी उस परब्रह्म से पूर्ण ही है; क्योंकि यह पूर्ण उस पूर्ण पुरुषोत्तम से ही उत्पन्न हुआ है। इस प्रकार परब्रह्म की पूर्णता से जगत् पूर्ण होने पर भी वह परब्रह्म परिपूर्ण है। उस पूर्ण में से पूर्ण को निकाल लेने पर भी वह पूर्ण ही बचा रहता है। आध्यात्मिक अधिदैविक और अधिभौतिक- तीनों तापों की शान्ति हो। 'ॐ सहनाववतु।। सह नौ भुनक्तु।। सह वीर्य करवावहै।। तेजस्विनावधीमतस्तु, मा विद्विषावहै। ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।'[2]

हे परमात्मा! आप हम गुरू शिष्य दोनों की साथ-साथ सब प्रकार से रक्षा करें, हम दोनों का आप साथ-साथ समुचित रूप से पालन पोषण करें, हम दोनों की अध्ययन की हुई विद्या तेजपूर्ण हो। कहीं किसी से हम विद्या में परास्त न हों, और हम दोनों जीवन भर परस्पर स्नेह सूत्र से बंधे रहें। हमारे अंदर कभी द्वेष न हो। हे परमात्मन् आध्यात्मिक अधिदैविक और अधिभौतिक- तीनों तापों की निवृत्ति हो।

* पूर्व-अतिथि प्रवक्ता, संस्कृत विभाग, आर्य महिला डिग्री कॉलेज चेतगंज वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

वैसे तो प्रार्थना एवं स्तुति प्रायः पर्यायवाची ही मानी जाती है और पृथक् पृथक् होने पर भी एक ही अर्थ में व्यवहृत होती हैं परन्तु दोनों शब्द दो अर्थों के द्योतक है। किसी के पूर्ण यशोगान एवं प्रशंसा का नाम स्तुति है, किन्तु 'अर्थ उपयाञ्चयाम् धातु में 'प्र' उपसर्ग एवं 'क्त' प्रत्यय लगाकर 'प्रार्थना' शब्द की रचना शब्द शास्त्रियों ने की है अपने से विशिष्ट व्यक्ति से दीनतापूर्वक कुछ मांगने का नाम प्रार्थना है। वेदों में कहा गया है, ''पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।।''[3]

प्रार्थना व्यक्तिगत भी होती हैं और सामूहिक भी दोनों प्रकार की प्रार्थनाएँ वेदों में प्रचुर रूप से हैं। यहाँ तक कि वेदों का लगभग तृतीयांश भाग केवल प्रार्थनाओं से ही ओत- प्रोत हैं। यदि सभी मन्त्रों का एकत्र संकलन कर दिया जाए तो एक बड़ा ग्रन्थ तैयार किया जा सकता है।

वेद भगवान् ने ईश्वरकृत जो सात मर्यादाएँ प्रसारित की हैं, उनका पालन करने वाला ही विशेष रूप से प्रार्थना का यथार्थ फल प्राप्त करता है। जिज्ञासुओं के अवलोकनार्थ उपर्युक्त सप्त मर्यादाओं का उल्लेख यहाँ किया जा रहा है। ''सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षुः/ तासामेकामिदभ्यंहुरो गात्। आयोर्हं स्कम्भ उपमस्य नीले/ पथां विसर्गे धरूणेषु तस्थौ।।''[4]

महर्षि यास्काचार्य ने अपने निरुक्तिशास्त्र में इस मन्त्र की व्याख्या इस प्रकार लिखी है- सप्तैव मर्यादाः कवयश्चक्रुः तासमेकामप्यभिगच्छन्नं हृस्वान भवति, स्तेयं, तल्परोहणं, ब्रह्महत्यां, भ्रूणहत्यां, सुरापानं, दुष्कृतस्य कर्मणः पुनः- पुनः सेवां, पातकेऽनृतोद्य मिति।[5]

महर्षियों ने सात् मर्यादाएं निश्चित की हैं। उन सप्तमर्यादाओं का अतिक्रमण इस प्रकार है- 1. स्तेय, 2. परस्त्रीगमन, 3. ब्रह्महत्या, 4. भ्रूण हत्या, 5. सुरापान, 6. दुष्कर्मो को बार-बार करना, 7. पाप को छिपाने के लिए मिथ्या भाषण।

जीवन शक्ति को वशीभूत करने वाला पुरुष, नियत रूप से परमात्मा के आश्रय में रहकर प्रार्थना पथ पर ही पाचभौतिक शरीर त्यागने के पश्चात् नित्य ध्रुवलोक में निवास करता है। अथर्ववेद काण्ड 3 सूक्त 30 के सात मन्त्रों में कहा गया हैं कि- 'सबको एकचित होकर एक साथ मिलकर एकस्वर से सामूहिक प्रार्थना करनी चाहिए। अन्यत्र भी वेदों में बारंबार आदेश दिया गया हैं कि 'अधिकांश संख्या में लोग एकत्र होकर एक साथ भगवत्प्रार्थना करें।' यथा- ''सहस्रं साकमर्चत परिष्टोभूत विंशतिः। शतैनमन्वनोनवुरिन्द्राय ब्रह्मोद्यतमर्चन्ननु स्वराज्यम्।।''[6]

सामूहिक प्रार्थना में किस प्रकार की भावनाएं होनी चाहिए? इस सम्बन्ध में कुछ मन्त्र यहां उपस्थित किए जा रहे है, ''ॐ भद्रङ्कर्णेभिः श्रृणुयाम देवा भद्रम्पश्येमाक्षभिर्यजत्राः। स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवा/ सस्तनूभिर्व्यशेमहिदेवहितंयदायुः।।''[7]

हे देवगण! हम अपने कानों से शुभ कल्याणकारी वचन सुनें। निन्दा, चुगली, गाली या दूसरी पाप की बात हमारे कानों में न पड़े। हम सदा भगवान् की आराधना में ही लगे रहें। नेत्रों से भी सदा हम कल्याण का ही दर्शन करें। किसी अमङ्गलकारी अथवा पतन की ओर ले जाने वाले दृश्यों की ओर हमारी दृष्टि का आकर्षण भी न हो। हमारा शरीर सुदृढ़ और सुपुष्ट हो, जिससे हम भगवान् का स्तवन करते रहें। हमारी आयु भोगविलास या प्रमाद में न बीतें। हमें ऐसी आयु मिले जो भगवान् के काम में आ सके।

''ॐ पश्येम शरदः शतम्, जीवेम शरदः शतम्, बुध्येम शरदः शतम्, रोहम शरदः शतम्, पूषेम शरदः शतम्, भवेम शरदः शतम्, भूयेम शरदः शतम्, भूयसीः शरदः शतात्।''[8]; ''ॐ श्रुणुयाम शरदःशतम्, प्रब्रवाम शरदः शतम्। अदीनाः स्याम शरदः शतम्, भूयश्च शरदः शतात्।।''[9]

हे प्रभो! हम सैकड़ों वर्ष तक देखें, सौ वर्ष तक जीवें, सौ वर्ष तक ज्ञान प्राप्त करते रहें, सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करते हुए सुशोभित रहें, सौ वर्ष से भी अधिक जीते रहे।

हे प्रभो। हम सौ वर्ष तक सुनते रहें, प्रवचन करते रहें, कभी दीन न हों, सदैव शुभ भावनाएँ धारण करें।

'ॐ शं नो मित्रः शं वरूणः। शं नो भवत्वर्यमा। शं न इन्द्रो बृहस्पतिः। शं नो विष्णुरूरूक्रमः। नमो ब्रह्मणे। नमस्ते वायो। त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वादिष्यामि। ऋतं वादिष्यामि। सत्यं वदिष्यामि। तत्मामवतु। तद्वक्तारमवतु। अवतु माम्। अवतु वक्तारम्।[10]

हे सर्वशक्तिमान्। सबके प्राणस्वरूप वायुमय परमेश्वर। आपको नमस्कार है। आप ही समस्त प्राणियों के प्राणस्वरूप प्रत्यक्ष ब्रह्म हैं, अतः मैं आपको ही प्रत्यक्ष, ब्रह्म के नाम से पुकारूंगा। मैं ऋत नाम से भी आपको पुकारूंगा क्योंकि सारे प्राणियों के लिए जो कल्याणकारी नियम हैं उस नियम रूप ऋत के आप ही अधिष्ठाता है तथा मैं आपको सत्य के नाम से पुकारा करूंगा

क्योंकि सत्य के अधिष्ठातृ देवता आप ही है। वे सर्वव्यापी अन्तर्यामी परमेश्वर मुझे सत् आचरण एवं सत् भाषण करने की, सत् विद्या को ग्रहण करने की शक्ति प्रदान करके इस जन्म-मरण संसार चक्र से मेरी रक्षा करें। तथा वे ब्रक्तवक्ता की अर्थात् आचार्य की रक्षा करें। रक्षा करें मेरी और रक्षा करें मेरे आचार्य की।

इसी प्रकार वैयक्तिक प्रार्थनाएँ भी हैं। वैसे तो व्यक्ति की विभिन्न कामनाओं का अन्त नहीं होता उन कामनाओं की पूर्ति के लिए ईश्वर प्रार्थना के सहस्रो मन्त्र वेदों में हैं, उनमें से कुछ यहाँ उद्घृत् किए जाते हैं, ''ॐ पर ऋणा सावीरध मस्कृतानि माहं राजन्नन्य कृतेन भोजम्। अव्युष्टा इन्नु भूयसीरूषास आ. नो जीवान् वरूण तासु शाधि।''[11]

'हे प्रभो! मेरे द्वारा किये हुए समस्त ऋणों को दूर कीजिए। ऐसा कीजिए कि मैं दूसरों की कमाई न खाऊँ। अपने परिश्रम से कमाकर खाऊँ। मेरे जीवन में अभी बहुत से उषाकाल आने वाले हैं। अतः मुझे ऐसा बनाइए कि मैं अपने पुरुषार्थ से जीवन यापन करूँ।'

इस प्रकार प्रार्थना मन और आत्मा का भोजन है। प्रार्थना के आदर्श का यह अल्प दिग्दर्शन प्रर्याप्त है। दुनियॉ के असंख्य प्रार्थना प्रेमी महापुरूषों ने हमारे सामने प्रार्थना के आदर्श उपस्थित किये हैं। उन्हीं के पद चिन्हों का अनुसरण करके हम भी प्रार्थना के बल पर अपने क्षुद्र जीवन को उदात्त तथा महान बना सकते हैं।

सन्दर्भ

[1]शुक्लयजुर्वेद, शान्तिपाठ
[2]कृष्णयजुर्वेदीय, शान्तिपाठ
[3]ऋग्वेद, 10/90/3
[4]ऋग्वेद, 10/5/6
[5]निरूक्त; नैगमकाण्ड, 6/5/27
[6]ऋग्वेद, 1/80/9
[7]ऋग्वेद, 1/89/8
[8]अथर्ववेद, 19/67/18
[9]शु0 यजु0, 36/24
[10]तैत्तिरीय आरण्यक, शान्तिपाठ
[11]ऋग्वेद, 2/28/9

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) 9,20-22
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 27 जून 2015

विशिष्टाद्वैत वेदान्त में वर्णित शरणागति का स्वरुप

प्रदीप नारायण शुक्ल*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *विशिष्टाद्वैत वेदान्त में वर्णित शरणागति का स्वरुप* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *प्रदीप नारायण शुक्ल* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

श्रुतियों पर आधारित एवं प्रस्थानत्रयी की व्याख्या के रूप में पल्लवित दर्शन को वेदान्त दर्शन कहते हैं। वेदान्त दर्शन का आधाराश्म वादरायण का ''ब्रह्मसूत्र'' है। इस महनीय ग्रन्थ 'ब्रह्मसूत्र' पर अनेक आचार्यों ने अपना-अपना भाष्य लिखा। अतः जितने भाष्यकार हुए उतने ही वेदान्त-दर्शन के सम्प्रदाय विकसित हुए। इन सम्प्रदायों में पाँच सम्प्रदाय- आचार्य शंकर का अद्वैत, आचार्य रामानुज का विशिष्टाद्वैत, आचार्य मध्व का द्वैत, आचार्य बल्लभ का शुद्धाद्वैत तथा आचार्य निम्बार्क का द्वैताद्वैत प्रमुख है। इसमें आचार्य शंकर के सम्प्रदाय को छोड़कर शेष सम्प्रदायों में विशिष्टाद्वैत वेदान्त के प्रतिष्ठापकाचार्य भाष्यकार रामानुज हुए। वेदों, उपनिषदों, पुराणों, आगमों और आलवार सन्तों के गीतों में विशिष्टाद्वैत वेदान्त के जो तत्त्वरत्न बिखरे पड़े थे, सँवार-सजाकर क्रमबद्धशास्त्रस्रक् का रूप देने का गुरुतर कार्य आचार्य रामानुज ने किया। इसी कारण विशिष्टाद्वैत वेदान्त को ''रामानुज वेदान्त'' के नाम से जाना जाता है।

भारतीय दर्शन के सभी सम्प्रदाय जन्म-मृत्यु चक्र को बन्धन और इसकी ऐकान्तिक तथा आत्यंतिक समाप्ति को मोक्ष नाम देते हैं। विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय के प्रतिष्ठापक आचार्य रामानुज मोक्ष प्राप्त करने के लिए ईश्वर भक्ति अन्यतम साधन बताते हुये कहते हैं कि- प्रत्यक्षता की कोटि को प्राप्त होने वाली ध्रुवानुस्मृति ही भक्ति शब्द का अर्थ है जिसका स्वरूप तैलधारा के समान अविच्छिन्न हो ऐसी स्मृति ही ध्रुवानुस्मृति मानी गयी है। इसी को वेदान्तदेशिक ने विसदृश बुद्धि के व्यवधान से रहित स्मृति प्रवाह कहा है।[1]

भक्ति के ज्ञान एवं कर्मपरक होने[2] के कारण उसकी सार्वभौमिकता में कमी आ जाती है, फलतः जनसामान्य की परिधि से उसकी दूरी बढ़ जाती है। समाज में जो पिछड़े लोग है, जिनका बौद्धिक विकास तत्सम्बन्धी ज्ञान के साधनों के अभाव में न हुआ हो, जो पावन वेदज्ञान एवं तद्विहित कर्मज्ञान के अधिकारी न हों चाहे वे शुद्ध हो या वर्णबाह्य चाण्डाल, सम्पूर्ण समाज का अर्धांश नारीवर्ग हो या भौतिक चाकचिक्य में चकित कर्मच्युत कोई अन्य व्यक्ति या समुदाय, वे ज्ञानकर्माभाव में परमपुरुष

* शोध छात्र, संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

प्राप्ति के उपायभूत भक्ति से वंचित रह जाते हैं। फलतः भक्ति के अभाव में उनके मुक्तिमार्ग में अवरोध उत्पन्न हो जाता है, जो आचार्य रामानुज को कथमपि स्वीकार नहीं है कि समाज का एक बहुत बड़ा वर्ग ईश्वर के प्रति प्रेम या उसकी कृपा से वंचित रह जाय। ईश्वरीय प्रेम या कृपा का अधिकारी तो मानवमात्र है, इसी मानवतावादी दृष्टिकोण से आचार्य रामानुज ने प्रपत्तिमार्ग या शरणागति का प्रतिपादन किया है।

आचार्य रामानुज प्रपत्ति शब्द का प्रयोग शरणागति के अर्थ में ही करते हैं। इन्होंने गीताभाष्य में माया से मुक्ति पाने के लिये 'प्रपद्यन्ते' पद द्वारा सत्यसंकल्प परमकारुणिक भगवान् श्रीमन्नारायण की शरणागति का विधान किया है।[3] और वेदार्थसंग्रह में इसी श्लोक को उद्धृत करते हुये कर्मकृत विचित्र गुणमयी प्रकृति संसर्गरूप संसार से मोक्ष प्राप्ति के लिये भगवान् की प्रपत्ति का विधान किया है।[4] शरणागति या प्रपत्ति के इसी स्वरूप को आचार्यपाद रामानुज के पूर्ववर्ती आचार्य यामुन ने विधिना सुस्पष्ट किया है, 'स्वयाथात्म्यं प्रकृत्यास्य तिरोधिः शरणागतिः।'[5] अर्थात् अपने याथात्म्य परमात्मा में स्वाभाविक रूप से जीव का तिरोभाव शरणागति है। इसका अभिप्राय है कि जीव जब अपने अहम्भाव को छोड़कर स्वाभाविक रूप से अपने प्रियतम परमात्मा में अपने को तिरोहित कर देता है तो वही 'शरणागति' है। इसी को भगवान् की प्रवृत्ति का विरोधि स्वकीय प्रवृत्ति से निवृत्ति रूप प्रपत्ति कहा गया है।[6] ईश्वर की प्रवृत्ति का सबसे बड़ा विरोधी जीव का अहंकार है, जिसके वशीभूत होकर वह अपने को कर्ता, भोक्ता आदि समझने लगता है। अहंकार द्वारा ही जीव ईश्वर से अपना स्वतन्त्र अस्तित्व मानता है। अहंकार के पूर्ण विलयन अर्थात् परित्याग द्वारा ही शरणागति का मार्ग प्रशस्त होता है।

प्रपत्ति या शरणागति इस संसार सागर में निमग्न प्राणिमात्र के मोक्ष हेतु अत्यन्त आवश्यक है। इसके अभाव में किसी को भी मोक्षप्राप्ति नहीं हो सकती।[7] शरणागति की द्विधा मोक्षसाधनता आचार्य रामानुज ने स्वीकार किया है, जिसके अनुसार प्रपत्ति ईश्वर प्राप्ति का स्वतन्त्रोपाय तो है ही, भक्तियोग की निष्पत्ति हेतु भी उसके अंग के रूप में प्रपत्ति की आवश्यकता होती है।[8] ''नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय'' इत्यादि श्रुतियों द्वारा भी सिद्ध है कि प्रपत्ति के अतिरिक्त मोक्ष की प्राप्ति पूर्णतया असम्भव है। शरणागति में जीव अपने अहं का सर्वथा विसर्जन करके मैं तुम्हारा हूँ, तुम्हीं मेरे आश्रय हो, इस प्रकार की भावना से अभिभूत होकर ईश्वर के प्रति अपने को समर्पित कर देता है, ईश्वर भी अपनी शरण में आये हुए भक्त को भवसागर के भयंकर वात्याचक्र से मुक्त कर अभय प्रदान करता है।[9]

आचार्य रामानुज भक्तियोग की सिद्धी के लिये शरणागति को आवश्यक माना है। शरणागति के भाव में भक्तिरूप ज्ञान अहं के रूप में परिणत हो सकता है, जो जीव के मुक्ति का सहायक नहीं बाधक है। अब प्रश्न उठता है कि किस अवस्था में प्रपत्ति या शरणागति भक्तियोग की सिद्धि में आवश्यक होता है? गीताभाष्य में आचार्यपाद ने प्रपत्ति या शरणागति की आवश्यकता भक्तियोग के आरम्भ का हेतु माना है।[10] अर्थात् शरणागति के अभाव में भक्ति की उत्पत्ति ही नहीं हो सकती। भक्तियोग के उत्पन्न होने पर भी जिस प्रकार माला में सर्वत्र सूत्र अनुस्यूत होता है उसी प्रकार भक्तियोग में सर्वत्र शरणागति का अनुवृत्त होना अत्यावश्यक है। अन्यथा साधक का विस्खलन सुनिश्चित है।

अहिर्बुध्न्यसंहिता में शरणागति या प्रपत्ति के षड्विध अवयवों का वर्णन है।[11] जिसे आचार्य रामानुज सहित विशिष्टाद्वैत के समस्त आचार्यों ने यथावत् स्वीकार किया है- (1) आनुकुल्यस्य संकल्पः अर्थात् ईश्वराभिमत् गुणों का अर्जन, (2) प्रातिकूल्यस्य वर्जनम् अर्थात् ईश्वरानभिमत गुणों का वर्जन, (3) रक्षयिष्यतीति विश्वासः अर्थात् ईश्वर रक्षा करेगा ऐसा विश्वास, (4) गोप्तृत्वावरणम् अर्थात् रक्षार्थ आवेदन, (5) कार्पण्य अर्थात् अपनी तुच्छता, (6) आत्मसमर्पण अर्थात् अहम्भाव का पूर्णतया विसर्जन करके ईश्वर के चरणों में अपने को छोड़ देना। वस्तुतः इनमें अन्तिम अवयव शरणागति रूप है और अन्य उसके अंगभूत हैं।

आचार्यपाद रामानुज द्वारा वर्णित शरणागति के कारण ही विशिष्टाद्वैत वेदान्त दो मतों में विभाजित हो गया था जिसमें पहला मत तैंगले मत है और द्वितीयमत बड़गलैमत। तैंगले मत के आचार्य पिल्लै लोकाचार्य हैं जो स्वपक्षपोषण हेतु मार्जारशावकन्याय का आश्रय ग्रहण कर शरणागति को सिद्ध करते हैं। द्वितीयमत के आचार्य वेदान्तदेशिक हैं जो मर्कटशावकन्याय से शरणागति को सिद्ध करते हैं। शरणागति समर्पण को भी तीन कोटियों में विभाजित किया जाता है- (1) फलसमर्पण, (2) भारसमर्पण, (3) स्वरूपसमर्पण। फलसमर्पक प्रपन्न शरणागति के द्वारा किसी भी प्रकार के आत्मानन्द या आत्मसन्तोष की कामना नहीं करता। सम्पूर्ण किये जाने वाले फल का त्याग ही ''फलसमर्पण'' है। प्रपन्न द्वारा अपनी रक्षा का पूर्णभार, भगवान् के प्रति समर्पित करना

ही 'भारसमर्पण' है। 'स्वरूपसमर्पण' का तात्पर्य प्रपन्न द्वारा अपने स्वरूप का पूर्णरूपेण परित्याग है।

इस प्रकार आचार्यपाद रामानुज ने शरणागति के स्वरूप को बताते हुये मोक्ष के लिये आवश्यक साधन के रूप में शरणागति को अनिवार्य बताया है तथा समस्त प्राणिवर्ग को शरणागति के द्वारा ही इस भौतिक प्रपंच से मुक्ति प्राप्त करने का एकमात्र साधन बताया है। रामानुज के पश्चवर्ती आचार्य वेदान्तदेशिक का तो यहाँ तक कहना है कि जिस ईश्वर की प्राप्ति या शरणागति का अधिकार पशुपक्षियों तक को है, उसे प्राप्त करने के लिये मनुष्यों में विरोध ही कहाँ।[12]

सन्दर्भ

[1]स्मृतेर्ध्रुवत्वं विसदृशबुद्धिव्यवधानरहितप्रवाहत्वम्। -तत्त्वटीका, पृष्ठ संख्या 89

[2]ज्ञानकर्मानुगृहीतं भक्तियोगम्। -गीताभाष्य, प्रथम अध्याय भूमिका

[3]दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया। मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।। -गीताभाष्य, 7/14

[4]तस्यैतस्य आत्मनः कर्मकृतविचित्रगुणमयप्रकृतिसंसर्गरूपात् संसारात् मोक्षः/ भगवत्प्रपत्तिमन्तरेण नोपपद्यते।। - वेदार्थसंग्रह, पृष्ठ संख्या 116

[5]*श्रीमद्भगवद्गीतार्थसंग्रह,* श्लोक संख्या 11

[6]*श्रीवचनभूषणमीमांसा,* पृष्ठ संख्या 43

[7]एतेषां संसारमोचनं भगवत्प्रपत्तिमन्तरेण नोपद्यते। -वेदार्थसंग्रह, पृष्ठ संख्या 116

[8]भक्तियोगनिष्ठस्यापि तन्निष्पत्यर्थं तदङ्गत्वेन प्रपत्तेरपेक्षितत्वात्। प्रपत्तिनिष्ठस्य स्वतन्त्रतया उपायत्वाच्च प्रपत्तिमन्तरेण नोपपद्यते।। -वेदार्थसंग्रह, तात्पर्यदीपिका, पृष्ठ संख्या 163

[9]सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते। अभयं सर्वभूतेभ्यो तदात्म्येतद् व्रतं मम।। -वाल्मीकि रामायण, 6/18/33

[10]भक्तियोगारम्भसिद्धये मामेकं परमकारुणिकमनालोचितविशेषशेषलोकशरण्य-/ माश्रितवात्सल्यजलधिं शरणं प्रपद्यस्व। -श्रीमद्भगवत्गीताभाष्य-18/66

[11]आनुकूल्यस्य संकल्पः प्रातिकूल्यस्यवर्जनम्। रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्ववरणं तथा। आत्मनिक्षेपकार्पण्ये षड्विद्या शरणागतिः।। -अहिर्बुध्न्यसंहिता, 37/28-29

[12]यत्र च तिरश्चामप्यधिकारः तत्र द्विपदां कः परिपन्थी? -शतदूषणीवाद, सं0 62

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) 9,23-26
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 29 अप्रैल 2015

इक्कीसवीं सदी के हिन्दी साहित्य में नारी चेतना (महिला उपन्यासकारों के विशेष संदर्भ में)

डॉ. प्रभा दीक्षित*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *इक्कीसवीं सदी के हिन्दी साहित्य में नारी चेतना (महिला उपन्यासकारों के विशेष संदर्भ में)* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *प्रभा दीक्षित* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

21वीं सदी अपनी वैज्ञानिक उपलब्धियों के कारण मानव जीवन के उन उच्चतम शिखरों तक पहुँची है, जहाँ मनुष्य की कल्पना को पहुँचने में भी लम्बा समय लग सकता है। सामाजिक जीवन के विविध आयामों में एक क्रांतिकारी परिवर्तन देने का श्रेय इस सदी को दिया जा सकता है। विज्ञान एवं तकनीकी से लेकर सभी सामाजिक विज्ञानों में इस सदी ने बौद्धिक रूप से अपनी उपलब्धियों को दर्ज किया है। साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है और सच तो यह है कि यह उस दर्पण की छवि को भाषाई रूप से सुधारने वाली किताबी ब्लैक बोर्ड की चाक स्टिक भी है। संक्षेप में कहा जाये तो मानव जीवन का सम्पूर्ण विकास ही साहित्य का लक्ष्य होता है। अपने युग के परिप्रेक्ष्य में हर युग के लोकहित-कारी साहित्य आम आदमी के जीवन को बेहतर रूप देने का प्रयास किया है। 21वीं सदी में जहाँ आम आदमी के सामने अनेक प्रकार की विसंगतियां हैं वहीं समस्या के रूप में अनेक सवाल भी सिर उठा रहे हैं। भारत आजादी के पूर्व साहित्य की मुख्य धारा यही थी कि भारत को विदेशी शासन से कैसे मुक्त किया जाये। यद्यपि सामाजिक समस्यायें भी थीं, क्योंकि समस्या एक दिन में पैदा नहीं होती, किन्तु हर युग की विशेष समस्यायें अवश्य होती हैं। साहित्य में शोषित वर्गों को बताते हुये पहले जहाँ किसानों, मजदूरों की बात की जाती थी, वहीं वर्तमान समय में दलित, आदिवासी और स्त्री विमर्श का मुद्दा विशेष रूप से चिन्हित किया जा रहा है। स्त्री विमर्श का मुद्दा इसलिये भी साहित्य का अहम् प्रश्न बन जाता है क्योंकि दुनिया की आधी आबादी आदिमकाल से लेकर आज तक पुरूष वर्चस्व के अन्तर्गत शोषण का शिकार रही है। समाज के सभी वर्गों की स्त्रियां विशेषतः भारतीय परिवेश पुरूष की उस अहंवादी मानसिकता का शिकार रही हैं जिसके अन्तर्गत स्त्रियों को पुरूषों के समान कभी भी सामाजिक अधिकार प्राप्त नहीं हुये। माना कि स्त्री विमर्श का मुद्दा आज के दौर में साहित्य की मुख्य धारा में दर्ज किया जाता है लेकिन आज भी इस कृषि प्रधान देश में स्त्री आबादी का

* प्राचार्या, श्री स्वामी नागा जी बालिका डिग्री कॉलेज [भरूआसुमेरपुर] हमीरपुर (उत्तर प्रदेश) भारत। (आजीवन सदस्य)

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

एक बहुत बड़ा हिस्सा पुरूष वर्ग की अधीनता के अन्तर्गत यंत्रणापूर्ण जीवन का निर्वाह कर रहा है। यह सिक्के का महत्वपूर्ण पहलू है, वैसे इस सदी में पहली बार स्त्री सामाजिक जीवन के हर क्षेत्र में पुरूष के साथ कदमताल करती हुई अपना हस्तक्षेप दर्ज कर रही है। यद्यपि यह प्रतिशत अमूमन बहुत कम है लेकिन कुछ क्षेत्र ऐसे भी हैं, जहाँ स्त्री अपनी पहचान बनाने में पुरूषों से बहुत आगे निकल गई है। भारतीय सामाजिक जीवन इसके पूर्व भी राजा राम मोहन राय से लेकर गाँधी तक ने स्त्री मुक्ति का प्रयास किया है किन्तु जब तक कोई शोषित वर्ग स्वयं चेतना सम्पन्न होकर कदम नही बढ़ाता उसे मुक्ति नहीं मिलती। हर्ष की बात है कि महिलाओं ने साहित्य में आज अपनी एक अलग पहचान बना ली है। वर्तमान में साहित्य की हर विधा में वह चाहे कहानी हो, कविता, हो, लेख हो व्यंग्य या आत्मकथा हो विशेष रूप से उपन्यासों में स्त्री लेखिकाओं ने स्त्री शोषण की सामाजिक जटिलताओं को क्रमबद्ध रूप से विस्तार के साथ चित्रित किया है।

21वीं सदी के साहित्य का एक बड़ा प्रतिशत महिला रचनाकारों के सृजन का परिणाम है। यह महिला रचनाकारों के जुझारू एवं प्रतिरोधी लेखन ही प्रतिफलन है कि स्त्री विमर्श आज साहित्य के केन्द्र में आ गया है। स्त्रीवादी विमर्श न तो मनोरंजन है न अपवाद। यह हमारे समय, देशकाल व पूरे वैश्विक परिदृश्य से जुड़ा है। इसे समय की जरूरत के रूप में भी चिन्हित किया जा सकता है। यह समग्र आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक, भाषिक और सांस्कृतिक विमर्श है। हिन्दी साहित्य में पिछले कुछ वर्षों से मुखर हुये स्त्रीवादी विमर्श ने कई नये मोड़ पैदा कर दिये हैं। स्त्री विमर्श एक नारा है। एक आन्दोलन है तथा गंभीर चिंता व चिंतन का विषय है।

सदियों से पुरूषों की अधीनता में जीवन यापन करती स्त्री वर्तमान समय में जहाँ सामाजिक जीवन के हर क्षेत्र में पुरूष वर्चस्वा को चुनौती दे रही है वहीं वह अपने आपको भोग्या भी नहीं स्वीकारती एवं देह के स्तर पर स्त्री-पुरूष देह के भेद को खारिज करती है। उदाहरणार्थ मैत्रेयी पुष्पा के प्रसिद्ध उपन्यास 'चाक' के सभी स्त्री-पात्र पुरूषों को चुनौती ही नहीं देते उन पर भारी पड़ते हैं। बुद्धि व देह ताप दोनों में अपनी पहल के द्वारा वे नारी को अबला नहीं सबला सिद्ध करते हैं। मैत्रेयी पुष्पा के 'विजन' उपन्यास की आभा दी। विवाह-बंधन को परम्परा मानते हुये नेहा को समझाती हैं, ''अपनी उस माँ जिसने अभाव झेलकर, मुश्किलों को सहकर, कई विरोधों को पार करके पढ़ाया-लिखाया, उस माँ को तीन नाम रसोईदारिन, धोबिन, मोचिन देकर अपने राजमहल को लौट जाओ। वह भी तुम जैसी बेहया और अहसान-फरामोश लड़की से मुक्ति पाये। शेम टू यू, शेमफुल टू अस।''[1]

वर्तमान समय में स्त्री लेखिकायें स्वयं अपने बारे में भी मुक्त होकर लिख रही हैं और कट्टरवादी लोगों के आक्रोश को झेलती हुई उनके हर प्रश्न का सटीक उत्तर भी दे रही है। ''अन्यथा उसे अनन्या'', एक कहानी यह भी', 'कस्तूरी कुण्डल बसे', जैसी आत्मकथायें स्त्रियों की जीवनगाथा और स्त्रीत्व के संघर्ष का सृजन है। साथ ही अपने जीवन-संघर्ष की चुनौतियों को खुले रूप में प्रस्तुत करती हैं।''[2]

इन आत्मकथाओं के माध्यम से लेखिकाओं ने स्त्री विमर्श के हर आयाम को स्पर्श करते हुये स्त्री अस्तित्व को तर्कपूर्ण ढंग से चित्रित किया है। इस सदी में स्त्री अपनी मुक्ति और स्वायत्तता के लिये तन कर पुरूष समाज में खड़ी हो, इसकी प्रतिक्रिया में समाज के परम्परागत रूढ़िवादी पुरूष पहरेदार उक्त लेखिकाओं के चरित्र पर भी कीचड़ उछाल रहे हैं। पुरूष आज भी स्त्री को अपने हितों के अनुरूप ढालना चाहता है किन्तु आधुनिक स्त्री बराबर का हक चाहती है। नासिरा शर्मा कहती हैं, ''न जाने पुरूषों को पत्नी के रूप में कैसी स्त्री चाहिये, यदि वह अनपढ़ अनगढ़ है तो फूहड़ कहलाती है; और पढ़ी-लिखी मिल जाये तो उसकी चुस्ती से आतंकित हो जाते हैं। ठीक ऐसी ही स्थिति भारतीय स्त्रियों की है।''[3]

इधर हाल में स्त्री प्रश्नों में जटिलता का एक कारक भू-मण्डलीकरण भी है। भू-मण्डलीकृत संस्कृति एक ओर स्त्री स्वाधीनता का दंभ भरती है तो दूसरी ओर उसकी देह का उपयोग विज्ञापन के रूप में अपने व्यापारिक हित के लिये करती है। उपभोक्तावाद, वैश्वीकरण, सनातन मूल्य और उत्तर आधुनिकता के घालमेल के कारण स्त्री मुक्ति की जटिलतायें बढ़ी हैं इसके बावजूद स्त्री सब कुछ लिख पा रही है जो दो दशक पूर्व वह सोच भी नहीं सकती थी। उपभोक्ता संस्कृति के अर्थवादी रूझान के कारण स्त्री स्वाभाविक रूप से आत्मनिर्भर होने के लिये विवश है। उसका घर की चहारदीवारी

से बाहर आना अनिवार्य है, इसलिये स्त्री हर क्षेत्र में स्वतंत्र होकर पुरूष के कामों में भागेदारी करना चाहती है। इसके कारण वह घरेलू हिंसा बलात्कार, यौन उत्पीड़न आदि त्रासद स्थितियों से जूझ भी रही है। इन परिस्थितियों को दृष्टि में रखते हुये मनीषा ने स्त्री की त्रासदी को सही शब्द प्रदान किये हैं, ''औरतों को धर्म, वर्ग, जाति, क्षेत्र में बांटने वाले नहीं जानते कि तीन अरब औरतों की पीड़ा, दुःख, क्षोभ, उपेक्षायें, त्रासदियाँ सब एक हैं। बस औसत कम या ज्यादा हो सकता है।''[4]

यूरोप की स्त्री तो अपने अधिकारों के लिये सत्रहवीं शताब्दी से ही संघर्षरत हैं और एशिया महाद्वीप की स्त्रियों के बरस्क अधिक स्वतंत्र भी है किन्तु भारती नारी का सही अर्थों में जागरण तो 19वीं सदी में प्रारम्भ हुआ है। वर्ण-व्यवस्था एवं पितृसत्ता के कारण उसकी दासता की जड़ें बहुत गहरी है। वर्तमान में नारीवादी लेखिकायें एक सदी की सम्पूर्ण त्रासद जटिलताओं को अपने साहित्य में उठाती हुई वर्गीय अधिकारों का लेखकीय संघर्ष चला रही है तथा आन्दोलनात्मक स्तर पर भी प्रयासरत है। जैसे चित्रा मुद्गल का 'आवां' एक महाकाव्यात्मक उपन्यास है। इसकी कथावस्तु मजदूर नेता देवीशंकर की बेटी नमिता के मोहभंग, पलायन एवं वापसी की कहानी है। विभिन्न स्थितियों में नमिता जीवन की एक जटिल कसौटी बनकर अपनी पहचान बनाती है।

इस उपन्यास में नारी शोषण के कई रूप देखने को मिलते हैं जिनमें निम्न एवं उच्च वर्ग की यथास्थिति को उजागर किया गया है। उच्चवर्गीय पात्र.... निम्नवर्ग के पात्रों का शोषण करते हैं। सम्पूर्ण विश्व में तथा विशेष रूप से भारत में स्त्री शोषण का एक बड़ा कारक वर्गीय भी रहा है। भारत का उच्चवर्गीय पुरूष कई सदियों पूर्व से आज तक निम्न वर्ग की नारी का हर तरह से शोषण करता रहा है। यौन शोषण की कहानियों से तो प्राचीन भारतीय आख्यान भरे पड़े हैं। आधुनिक समय की महिला कथाकारों ने इसे स्वानुभूति के आधार पर पूरी स्वाभाविकता के साथ यथार्थ वर्णन किया है। प्रभा खेतान अपने प्रसिद्ध उपन्यास छिन्नमस्ता में लिखती हैं, ''औरत कहाँ नहीं रोती, सड़क पर झाड़ू लगाते हुये, खेतों में काम करते हुये, एयरपोर्ट पर बाथरूम साफ करते हुये या फिर भोग, ऐश्वर्य के बावजूद मेरी सासूजी की तरह पलंग पर रात-रात भर अकेले करवटें बदलते हुये। हाड़-मांस की बनी हुई ये औरतें....अपने अपने तरीकों से जिंदगी जीने की कोशिश में छटपटाती हैं। हजारों सालों से इनके आंसू बहते आ रहे हैं।''[6]

वर्तमान समय में आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर कहलाने वाली स्त्रियों के सामने भी त्रासद समस्यायें हैं। वे घर और बाहर, दोहरे दायित्व का निर्वाह करने के बाद भी पुरूष वर्गीय तानों का शिकार होती रहती हैं जिसकी प्रतिक्रिया में कई बार विद्रोह भी कर बैठती हैं। ''आपके के भीतर वही सामन्तवाद पति जिंदा है। आप चाहते हैं पत्नी नौकरी करे। साथ ही घर की देखभाल भी करे...चूल्हा चौका भी करे। फिर पति के पांव दबाये। इसके बाद भी पति को शिकायत है कि वह न तो घर को देखती है, न पति को। अच्छा इतना ही नहीं पति को सारी छूटे हैं।''[7]

वर्तमान समय में पुरूषों की भांति स्त्रियाँ भी विदेशी नौकरी में जा रही हैं। वहाँ उन्हें दूसरे देश की संस्कृति के अनुसार समन्वय करना पड़ता है। भारतीय महिला लेखिकाओं ने ऐसी स्त्रियों की समस्याओं को आधार बनाकर अपने उपन्यासों की रचना की है। विशेष रूप से ऊषा प्रियंवदा के तीन उपन्यासों; 'शेष यात्रा' (1904), 'अन्तरवंशी' (2004), 'भया कबीर उदास' में प्रवासी भारतीय स्त्री जीवन के विभिन्न पहलुओं को समग्रता के साथ उजागर किया गया है। इसी तरह अनामिका ने पाश्चात्य और पौर्वात्य दोनों संस्कृतियों का गहन अध्ययन करते हुये नारी जीवन की जटिल त्रासदी को अपने उपन्यास 'तिनका तिनके पास' में उभारा तथा अलका सरावबी ने 'कलिकथा वाया बाईपास' में नारी के त्रासद मनोविज्ञान को प्रेषित किया है। आधुनिक समय की स्त्री समस्याओं को अपने लेखन का माध्यम बनाने वाली प्रमुख लेखिकाओं में कृष्णा सोबती, मृदुला मुन्नू भण्डारी, अमृता प्रीतम, प्रभा खेतान, मैत्रेयी पुष्पा, अलका सरावगी, नासिरा शर्मा, ऊषा प्रियम्वदा, चित्रा मुद्गल, कुसुम अंसल, मृणाल पाण्डे, प्रभा शास्त्री, सुधा अरोड़ा, मेहरून्निशा परवेज, ऊषा महाजन, लवलीन, मधु कांकरिया, गीतांजलि श्री आदि के नाम लिये जा सकते हैं।

अंत में

अन्त में हम पूरे भरोसे के साथ आज यह कहने की स्थिति में हैं कि वर्तमान सदी की स्त्री लेखिकाओं ने अपने लेखन

में आधुनिक स्त्री जीवन के व्यापक आयामों को स्पर्श करते हुये स्त्री सम्बन्धी अनेक पुराने व नये प्रश्नों को उठाया ही नहीं बल्कि उनके विकल्पों को भी चिन्हित किया है। कस्बों, गाँवों, शहरों से लेकर दूर-दराज के देशों में काम करने वाली स्त्रियों के त्रासद अनुभवों को शब्द प्रदान किये हैं। टी0एस0 इलिएट के अनुसार, ''इतिहास जहाँ प्राचीनता में रमता है वहीं वह भविष्य में दृष्टि भी रखता है। इस सदी की लेखिकाओं ने प्राचीन ग्रंथों के नारी पात्रों का नये चिंतन के अनुरूप उनका मूल्यांकन भी किया है एवं आधुनिक स्त्री विरोधी रूढ़ परम्पराओं का पोष्टमार्टम भी किया है। इस सदी की स्त्री लेखिका वर्तमान संस्कृति का इतिहास गढ़ने जा रही है जहाँ आधी आबादी की उपेक्षा संभव नहीं होगी। वह स्त्री पुरूष सम्बन्धों की बराबरी एवं सह-भागिता की पक्षधर होने के साथ पुरूष प्रधान संस्कृति की कटु आलोचना करती हुई एक ऐसे समाज के निर्माण का स्वप्न देख रही है जहाँ लिङ्ग के आधार पर कोई भेदभाव सम्भव नहीं होगा। वस्तुतः स्त्री पुरूष सह व सम अस्तित्व में सृष्टि का कल्याण निहित है। अतः 'साझी उड़ान' शीर्षक कविता में मैंने (प्रभा दीक्षित) लिखा, ''आओ हम कदम बा कदम/ साथ-साथ चलते हुये/ भविष्य के साझा सम्बन्धों के निर्माण में/ रेतीले सागर के तट पर/ अपने पदचिन्ह अंकित करें।''[8]

संदर्भ ग्रंथ

[1]मैत्रेयी पुष्पा- *'विजन'* उपन्यास, पृष्ठ संख्या 141

[2]प्रॉ आशा दूबे- *21वीं सदी के आत्मकथात्मक कथा साहित्य में स्त्री विमर्श उद्धृत 21वीं सदी के प्रथम दशक के उपन्यास,* पृष्ठ संख्या 32

[3]नासिरा शर्मा- उद्धृत आशा दूबे कृत शोधालेख '21वीं सदी के आत्मकथात्मक कथा साहित्य में स्त्री विमर्श',

[4]पृष्ठ संख्या 34

[4]मनीषा- *हम सभ्य औरतें,* सामयिक प्रकाशन दिल्ली

[5]प्रॉ सतीश पटेल- *प्रथम दशक की प्रमुख महिला कथाकार चित्रा मुद्गल और आंवा उद्धृत 21वीं सदी के प्रथम दशक के उपन्यास,* पृष्ठ संख्या 61, सरस्वती प्रकाशन कानपुर

[6]प्रभा खेतान- *छिन्नमस्ता,* पृष्ठ संख्या 220

[7]मुन्नू भण्डारी- *एक इंच मुस्कान,* पृष्ठ संख्या 220

[8]प्रभा दीक्षित- *'साझी उड़ान';* उद्धृत साझी उड़ान कविता संग्रह, सैनबन पब्लिकेशन दिल्ली, पृष्ठ संख्या 12

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) 9,27-31
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 20 मई 2015

आज के सवाल पर कवि की पीड़ा (काव्य संग्रह "पीड़ा" के विशेष संदर्भ में)

डॉ. पी. सी. घृतलहरे*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *आज के सवाल पर कवि की पीड़ा (काव्य संग्रह "पीड़ा" के विशेष संदर्भ में)* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *पी. सी. घृतलहरे* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

सारांश

विभिन्न क्षेत्रों में हो रही विसंगतियों, अपराधों, अनियमितताओं को लेखक-कवियों ने समय-समय पर साहित्य के माध्यम से पाठक तक पहुँचाने का प्रयास किया है। इसी कड़ी में इस वर्ष 2014 में जयपुर राजस्थान से काव्य संग्रह ''पीड़ा'' का प्रकाशन हुआ है। इस काव्य संग्रह में, कवि चौबीस प्रकार की पीड़ा से द्रवित हुआ है। इसमें एक समानता है, जैसे- 'पीड़ा' का प्रथम अक्षर 'प' है, वैसे ही समस्त प्रकार की पीड़ा का प्रथम अक्षर भी 'प' है। इसकी शुरूआत 'प' की 'पहचान' की पीड़ा से होती है एवं समापन 'प' के 'प्रसाद' की पीड़ा एवं 'प' के 'परम', पीड़ा के साथ होता है। है। इस प्रकार इसमें पहचान की पीड़ा, पद की पीड़ा, पैसे की पीड़ा, परिधान की पीड़ा, पेपर की पीड़ा, पीड़ा, प्रकृति की पीड़ा, प्रलय की पीड़ा, पेड़ की पीड़ा, पवन की पीड़ा, पुष्प की पीड़ा, परिवहन की पीड़ा, पशु की पीड़ा, प्रभात की पीड़ा, परमेश्वर की पीड़ा, पुरुषार्थ की पीड़ा, परीक्षा की पीड़ा, प्रांत की पीड़ा, प्रजा की पीड़ा, प्रधान की पीड़ा, पायल की पीड़ा, प्रेम की पीड़ा, प्रसाद की पीड़ा एवं परम पीड़ा समाहित है।

पुस्तक के आवरण पृष्ठ के अनुसार कवि लिखते हैं कि ''इसमें, मैं दूसरों की बात नहीं करता, मैं (स्वयं) मानव बनने की कोशिश में लगा हूँ। यदि पाठक भी इस संग्रह की अश्रुधारा से प्रभावित एवं इसमें प्रवाहित होकर नमकीन अश्रु की जगह मीठे जल का पान कर पाता है एवं पीड़ा का अहसास कर इस संसार को पीड़ारहित करने में अपना अल्प योगदान भी दे पाता है तो मानव बनाने का यह काव्य-संग्रह पूर्ण सार्थक हो जाएगा।''

यहाँ यह कहना आवश्यक होगा कि आत्येक कविता के प्रारम्भ में समस्या को उठाते हुए अंत में उसके समाधान की कोशिश की गई है। गायत्री मन्त्र में जितने अक्षर होते हैं, उतनी कविताएँ इस संग्रह में स्थान पायीं एवं कवि की पीड़ा के एक-एक भाव को इस काव्य संग्रह में शब्द मिला है। कभी जड़, तो कभी चेतन की पीड़ा; कभी मानव, तो कभी पशु-मन की पीड़ा मन से आँखों

* प्राचार्य, एम. जी. गवर्नमेंट कॉलेज [खरसिया] रायगढ़ (छत्तीसगढ़) भारत

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

के रास्ते छलक पड़ी हैं। सर्वप्रथम, कवि ने इस खुशामदी दुनिया के बीच प्रतिभाशाली लोगों की, गुम होती पहचान को पीड़ा के रूप में स्याही दी है एवं भारत देश की, मरणोपरान्त पुरस्कार देने की परम्परा को उकेरा है।

''ये जिंदगी किसकी अमानत,/ किसने किया अहसान, सोचता हूँ। दानवी दुनिया की भीड़ में,/ मैं अपनी पहचान खोजता हूँ।।''(पृ0 14)

द्वितीय कविता में; किसी नशेबाज, रिश्वतखोर, अयोग्य व्यक्ति द्वारा पदासीन होने पर उस पद की गरिमा लज्जित होती है; को ध्यान में लाया गया है।

''गरिमा ने पूछा उसके पद से,/ मुझे तुम्हारी खता बता दो। वरन् जिसने तुम्हें नीचा दिखाया,/ उसका पता बता दो।।'' (पृ0 16)

इस कविता के अन्त में-

''ऐ अधिकारी ! मेरे नाम से,/ अपनी पहचान बताते हो। पद दुरूपयोग करो तुम,/ और मुझ पर इल्जाम लगाते हो।। हिदायत !!!/ बनाये रखो पद - मान। वरन् त्याग दो पद - नाम।। यदि पद- मान न हो सका तो नौकरशाहों,/ पद को मुक्त कर दो। देश में फिर से स्वागत- राजतंत्र,/ गणतंत्र को लुप्त कर दो।।''(पृ0 17)

तृतीय पद्य में; आर्थिक विषमता से उत्पन्न वर्ग विषमता एवं धन के असमान वितरण से पैसे के हो रहे दुरुपयोग को रेखांकित किया गया है।

''पैसे ने कहा, पैसे वाले से,/ मेरी कुछ परवाह करो। पैसे का दुरूपयोग न हो,/ ऐसे कर्त्तव्य का निर्वाह करो।।'' (पृ0 18)

इस कविता के अन्त में-

''यह वितरित हो इस आधार पर,/ आदमी की संख्या और आकार पर। अंकुश लगेगा शक्ति और अधिकार पर,/ और बंदिश काला धन व्यापार पर।।''(पृ0 19)

परिधान की पीड़ा में, पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव से भारत की वैदिक कालीन नारियों की लजाती परिधान- परम्परा को कलमबद्ध करने का प्रयास किया गया है।

''इज्जत हूँ, अस्मिता हूँ,/ आम इंसान पर अहसान किया। परिधान हूँ, परिष्कृत हूँ,/ पर परिवेश ने परेशान किया।।'' (पृ0 20)

अन्त में-

''कल मजबूर थे, गरीबी ने नंगा किया। आज कामातुर से, अमीरी ने नंगा किया।। कल आदिमानव थे, अशिक्षा और अभाव में। आज आदिमानव हैं, फैशन के प्रभाव में।।''(पृ0 21)

पेपर की पीड़ा में, समाचार-पत्रों के पठन पश्चात् सही रख-रखाव नहीं होने की दशा पर चिंता जताई गई है।

''पुस्तक ने पूछा पेपर से,/ मुझे तुम्हारी खता बता दो। वरन् जिसने तुम्हें पोंछा बनाया,/ उसका पता बता दो।।'' (पृ0 22)

अन्त में-

''संपादक!/ ऐसी कुछ जतन करो,/ मुझ पर गोबर टट्टी मत डालो। मेरी इज्जत न कर सको,/ तो मुझे ही मत निकालो।।''(पृ0 24)

'पीड़ा' में, जो कि इस काव्य-संग्रह का शीर्षक भी है, यह बताने की कोशिश की गई कि दिन-पर-दिन गुजरते जाते हैं, मास-पर-मास गुजरते जाते हैं, साल-पर-साल गुजरते जाते हैं, परन्तु सब कुछ लगभग वही रहता है। सन् 2010 से 2011 आया, 2011 से 2012 आया, फिर 2013 आया, 2014 आया; सन् 2014 से 2015 आयेगा, 2015 से 2016 आयेगा, 2017 आयेगा। न पहले बदला, न आगे बदलेगा; यही, पीड़ा का कारण है। चूँकि परिवर्तन, संसार का नियम है इसलिए समय बीतने के साथ-साथ हमारे व्यवहार में, हमारी सोच में आमूल-चूल परिवर्तन न सही, उसी रूप में पर विकास की ओर, प्रगति की ओर एवं श्रेष्ठ रूप में परिवर्तन होना चाहिए। इसके अतिरिक्त 16 दिसम्बर 2012 को दिल्ली में हुई अमानवीय कृत्य (सामूहिक

दुष्कर्म) को भी उकेरा गया है। तत्कालीन, बाला का नाम दामिनी था। ''दर्दे-दिल, दिल्ली दफन हुई, उजड़ा दामिनी डेरा। पलकें नम, सहमे तन, ये है पीड़ा की बेरा।।''(पृ0 25)

इसके समाधान में कवि कहता है कि अपराधी जिस अंग से अपराध करता है उस अंग को ही काट देना चाहिए।

''कविता वनिता वही,/ कहानी रूमानी वही,/ बकवास सारी रचना है। अपराधी के काटो अंग,/ छेड़ो जंग,/ बस यही कहना है।। रचना भी झूठी, कथा भी झूठी, ये है जंग की बेरा। पलकें नम, सहमे तन, ये है पीड़ा की बेरा।।''(पृ0 26)

प्रकृति की पीड़ा में, 16 जून 2013 को बद्रीनाथ एवं केदारनाथ (उत्तराखण्ड) में बादल फटने से हुई विशाल जन-धन की हानि को पाठक के समक्ष रखा गया है। ''रोती हुई बेटी ने पुकारा, करूण स्वर में पिता को। प्रकृति इतनी बेरहम क्यों ? मुझे यह बात बता दो।।''(पृ0 28)

अन्तिम पंक्ति में, ''चहुँ ओर दुख, दर्द और मातम का महाकाल था। वहाँ पिता से नहीं, पिता के शव से सवाल था।।''(पृ0 29)

प्रलय की पीड़ा में, यह मनोभाव व्यक्त किया गया है कि प्रलय में सब कुछ डूब जाये तो डूब जाये पर गरीब, मासूम, असहाय को उनके परिश्रम के बदौलत मिलने वाला थोड़ा-सा सुख भले ही वह अल्पकालीन हो, न डूबे। साथ में सत्य, प्रेम भी प्रलय के पश्चात् शेष बने रहे। ''जग में कभी कभी, ऐसा भी होता है। प्रखर प्रलय भी, फफककर रोता है।।''(पृ0 30)

अन्त में प्रलय ने प्रतिवाद किया, ''प्रलय में कुछ बचे न बचे। पर प्रणय जरूर बचे।।''(पृ0 31)

पेड़ की पीड़ा में, पेड़ और बीज के कष्टपूर्ण संवाद को पिता और पुत्र के संवाद के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसमें पेड़ की अंधाधुंध कटाई से पूरे विश्व में उत्पन्न पर्यावरण के संकट को निरूपित करते हुए इसके लिए मनुष्य को जिम्मेदार ठहराया गया है। ''बीज ने पेड़ से कहा- पापा, मुझे तुम्हारी खता बता दो। वरन् जिसने तुम्हें नोचा, उसका पता बता दो।।''(पृ0 32)

अन्तिम पंक्ति में- ''कब तक हम शिकार हों, चलो अपनी संख्या घटा लें। मानव की तरह क्यों न हम भी, पुरूष नसबंदी करा लें।।''(पृ0 33)

पवन की पीड़ा में, पवन के भाव को ग्रहण किया गया, साथ में स्वच्छ वायु में कारखाना जनित प्रदूषित या जहरीली गैस के मिश्रण होने से पूरे वातावरण का मानव-जीवन के लिए हानिकारक होने को अभिव्यक्ति दी गई है।

''स्वच्छ हूँ, मधुर हूँ, मंद-मंद समीर हूँ, साँस बन प्राण हुआ। प्रदूषित गैस के मिश्रण से, मैं पूरा-पूरा बदनाम हुआ।।'' (पृ0 34)

अन्तिम पंक्ति में- ''मैं पवन हूँ, पकड़ो न, बहने दो। अकेला हूँ, अच्छा हूँ, रहने दो।।''(पृ0 35)

पुष्प ने स्वयं को शहीद पुत्र की माँ के कदमों पर अर्पित होने की इच्छा प्रकट की एवं शर्मनाक-साधू, बलत्कारी बाबा, राजसी-राजनयिकों से दूर रहने के मनोभाव को व्यक्त किया।

''मेरा खिलना, झूमना, सभी प्राणियों का प्रेम गीत होता है। पर प्रकृति ऐसी मेरी, कि रोना भी हँसना प्रतीत होता है।।'' (पृ0 36)

अन्तिम पंक्ति में- ''मुझे खिलने दो, खिलना मेरी जिंदगी है। बीरों को छोड़, मिलना शेष दिल्लगी है।।''(पृ0 37)

वाहन-चालन के समय मस्ती करने, हेल्मेट न पहनने, यातायात के नियमों का पालन न करने, सावधानी न बरतने आदि कई बातों की अभिव्यक्ति परिवहन की पीड़ा में हुई है। ''सुविधा का साधन हूँ, मुझसे प्रेम दोस्ती कर लो। वरन् यम का वाहन हूँ, जीवन सस्ती कर लो।।''(पृ0 39)

जुबानहीन पशु की पीड़ा में मर्महीन मानव द्वारा अपनी कमजोरी के लिए पशुओं का गलत इस्तेमाल किए जाने को शब्द मिला है।

''मानव गुण को यदि मानवता कहें,/ और दोष को पशुता। तो पशु गुण को क्या पशुता कहें ?/ यह बात मुझे बता।।'' (पृ0 40)

अन्तिम पंक्ति में- ''पशुता से वास्ता नहीं, अतः पशु-नाम बदल दो। अगर नाम कोई न मिले तो,/ हे मानव और पशु! आपस में ही नाम बदल लो।।''(पृ0 41)

प्रभात की पीड़ा में लोगों द्वारा एक-दूसरे को सुप्रभात करने के साथ ही पूरे दिन के सु (अच्छे) होने के बजाय कु (बुरा) होने की ओर इशारा किया गया है।

''होते ही प्रभात लोग,/ करते एक दूजे को सुप्रभात। प्रभात की प्रभा का,/ तेज भुला पहुँचाते आघात।।''(पृ0 42)

अन्तिम पंक्ति में- ''यदि इसी का नाम प्रभात है, तो प्रभात से वास्ता तोड़ दूँ। मेरी जिंदगी से दूर जा सूर्य, काली रात से नाता जोड़ लूँ।।''(पृ0 44)

धार्मिक मान्यता अनुसार परमेश्वर ने इस दुनिया को बनाया है। अपने निर्माण की दुर्दशा, भिन्नता, विषमता व विचित्रता को देखकर परमेश्वर की पीड़ा भी इस काव्य संग्रह में अभिव्यक्ति पायी है।

''लोगों में सहिष्णु, प्रेम हो और सबका शीतल छाँव हो। मेरी निष्ठा में न सही, स्वार्थपरता में सम भाव हो।।'' (पृ0 47)

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के सही अर्थ ग्रहण न करके पूरे पुरूषार्थ से पथहीन होकर मानव के पशु तुल्य होने को पुरूषार्थ की पीड़ा में पद मिले हैं। ''हे मनुष्य!/ मत कर बाह्याडम्बर, मिथ्याभिमान। बल, बुद्धि, विद्या के तुम खान।। पुरूषार्थ अपनाकर बनो महान। वरना तुम और पशु एक समान।।''(पृ0 49)

उपाधि के लिए परीक्षा हो, या किसी पद पर भर्ती की परीक्षा हो, कहीं-न-कहीं गड़बड़ी के आरोप लगे हैं; इसी बात को परीक्षा की पीड़ा में उभारा गया है।

''आज परीक्षा में ऐसा भी!/ पैसे लाओ, प्रमाण-पत्र पाओ। परीक्षा पर लगे इल्जाम,/ इसका परीक्षण कराओं।।''(पृ0 50)

अन्तिम पंक्ति में- ''सीता ने दी अग्नि परीक्षा,/ तुम इसे मत भुलाओ। परीक्षा पर लगे इल्जाम,/ इसका परीक्षण कराओ।।'' (पृ0 51)

विश्व परिवार के अंश प्रान्त को इस बात की पीड़ा है कि उसे क्षेत्र में जकड़ दिया गया है।

''मैं परा-अन्त हूँ, परिन्दा-सा,/ मुझे सत्ता ने पकड़ लिया। विश्व परिवार का अंश हूँ,/ पर क्षेत्र ने जकड़ दिया।।'' (पृ0 52)

अन्तिम पंक्ति में प्रान्त ने यह आह्वान किया कि- ''संयुक्त राष्ट्र के सारे नेता। मिल जुल करें ये तय।। न क्षेत्र पर लड़ें, न धर्म पर। न हो आतंक का भय।। सर्व जन मिल गाएँ गीत। विश्व का, हो तन्मय।। विश्व बन्धुत्व हो, और हो। एक सुर, एक लय।। भारत माता के साथ हो। विश्व विधाता की जय।।''(पृ0 53)

वयस्क मताधिकार को ध्यान में रखकर भारतीय प्रजा की पीड़ा का उल्लेख काव्य संग्रह में आया है, इसमें मतदान की प्रक्रिया में सुधार की आवश्यकता पर बल दिया गया है। ''सरकार बनाई प्रजा ने, तो क्या प्रजा-हित में काम हुआ। स्वार्थ में पड़ गई सरकार, तो प्रजा का चक्काजाम हुआ।।''(पृ0 54)

अन्तिम पंक्ति में- ''मैं संविधान में संशोधन, इस बार चाहता हूँ,/ पाँच साल में कभी भी, कई बार चाहता हूँ। जब मेरा निर्वाचित नेता, अन्याय पर चले,/ तब मत वापस लूँ, यह अधिकार चाहता हूँ।।''(पृ0 55)

प्रधान की पीड़ा में किसी राज्य के मुखिया की पीड़ा की कल्पना की गई है। अकेले के कर्त्तव्य-बोध एवं अपने अधिकार के प्रति जागरूक हो जाने मात्र से देश का वर्तमान एवं भविष्य स्वर्णिम नहीं हो जाता, इसके लिए पूरी टीम को सच्चाई की धरातल पर उतरना होगा। ''मैं प्रधान हूँ परिवार का, हर सदस्य मेरी शान है। पर संतान का मतभेद ही, मेरी पीड़ा का दास्तान है।।''(पृ0 57)

अन्तिम पंक्ति में- ''मत यदि सत् है तो उसकी टांग मत खींचों। क्यों न वह विरोधी के हों, पूरी लगन से सींचो।।'' (पृ0 58)

पायल की पीड़ा में सौभाग्यकांक्षिणी की अरमान व सौभाग्यवती की पहचान 'पायल' नामक आभूषण को दूसरी पायल नाम की नारी ने पहना है। इस आभूषण को तोड़ने वाली मर्द जाति जो दरिन्दे किश्म के होते हैं, को इस कविता में कोसा गया है।

''पायल ने पूछा पायल से, पायल' ने पूछा पायल'' से,/ मुझे तुम्हारी खता बता दो। जिसने चुरायी तेरी छन-छन,/ उसका पता बता दो।।''(पृ0 59)

अन्तिम पंक्ति में- ''हे मेरे पालक के पोषक!/ पायल का दर्द मिटा दो,/ या सदा के लिए पैरों से,/ पुनीत पायल को हटा दो।।''(पृ0 61)

प्रेम की पीड़ा में प्रेमी, प्रेमिका, माँ, बाप व देश में क्रमशः प्रेमिका, प्रेमी, संतान, पुत्री व देशवासी के लिए निहित प्रेम एवं प्रत्युत्तर में प्राप्त फल को अंकित किया गया है।

''हर बार होता है क्यों ऐसा। पैसे से प्रेम है और प्रेम ही पैसा।।''(पृ0 63)

अन्तिम पंक्ति में- ''मैं प्रेम हूँ, पवित्र पसंद; सदा अपने पास रखो। पत्थर दिल में भी पनपूँ, ऐसा प्रयास करो।।''(पृ0 64)

अपने ईष्ट से कृपा-प्रसाद प्राप्त करने वाला दुर्भावनाग्रस्त हो सकता है, सद्भावनापूरित भी हो सकता है। दुरूपयोग या सद् उपयोग की भावना से अपरिचित प्रसाद की इसी पीड़ा को कविता का मुख्य आधार बनाया गया है।

''पात्र हो, कुपात्र हो, सबके सिर पर हाथ फेरा। प्रसाद का यही गुण, दुख का कारण बनता मेरा।।''(पृ0 65)

अन्तिम पंक्ति में- ''ग्राही की भावना, गॉड से अवलोकित हो। ऐसा कुछ चमत्कार वहाँ व्यवहृत हो।। जिससे प्रसाद का गुण ऐसा निश्चित हो। कि जब दुर्जन ले उसे, तो जहर मिश्रित हो।।''(पृ0 66)

परम पीड़ा में यह अभिव्यक्ति दी गई है कि यदि अंधे, गूंगे व बहरे कुछ न कर पाये तो वह उनके अपूर्ण अंगों के कारण है एवं इससे जनित पीड़ा उनका करम है। परन्तु जब पूर्ण आँखों वाला, जुबान वाला, सुन सकने वाला, बुद्धिमान, शिक्षक, पुलिस, न्यायाधीश, नेता, अधिकारी, सन्त, चिकित्सक, वकील, अभियन्ता, पत्रकार एवं लेखक-कवि यदि अपने कर्त्तव्य को न करें, ऐसा नहीं, अपितु गलत करें तब प्रत्युत्पन्न पीड़ा परम होती है। एक उदाहरण कवि को लेकर- ''कवि-लेखनी में/ यह ताकत है,/ कि काया कल्प कर दे। किंचित को अधिक,/ तो अति को अल्प कर दे।।'' ''कवि की कविता अमर न हो,/ तो पीड़ा सहज होती है। पर कविता का असर न हो, तो पीड़ा परम होती है।।''(पृ0 70)

संदर्भ

डॉ0 टण्डन, रमेश- पीड़ा, प्रियंका पब्लिशिंग हाऊस जयपुर, 2014, ISBN : 978-81-929520-9-3

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) 9,32-34
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 29 अप्रैल 2015

समकालीन चुनौतियाँ और नागार्जुन की कवितायें

डॉ. विजय कुमार*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *समकालीन चुनौतियाँ और नागार्जुन की कवितायें* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *विजय कुमार* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

एक आम आदमी के लिए छद्म आवरणों में लिपटे हुए युग के विषम यथार्थ तथा संकट को पकड़ पाना हर युग में कठिन रहा है। वर्तमान युग के जिसके लिए उत्तर आधुनिकता, उत्तर औपनिवेशिकता, उत्तर पूँजीवाद जैसे मुहावरे गढ़े गये हैं, बहु-आयामी जटिल तथा गतिशील यथार्थ तथा इसके संकट को पहचान पाना तो और कठिन है। बाजार की चमक-दमक, सूचना विस्फोट भू-मंडलीकरण आदि के कारण आज एक आम भारतीय भी उत्तर आधुनिक युग में जीने की खुशफहमी पाल रखा है। सच तो यह है कि हमें वैचारिक तथा आर्थिक स्तर पर आधुनिक होने के पूर्व ही उत्तर आधुनिक युग में धकेल दिया गया है। यह बहु प्रचारित सत्य है कि करोड़पतियों की संख्या सबसे अधिक भारत में है। सत्य का दूसरा पहलू यह है कि आज गरीबी रेखा से नीचे जीवन-यापन करने वालों की संख्या भी सबसे अधिक भारत में ही है। पूँजीवाद सामन्तवाद का स्थान ग्रहण कर शोषण के नये-नये तरीके तलाश रही है। उपभोक्ता के रूप में एक आम आदमी की आत्मतुष्टि खतरनाक रूप लेता जा रहा है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ गरीब की जेब से अठन्नी तक निकाल लेने के तरीके का इजाद कर चुकी है और बाज़ार की चमक-दमक से बच पाना आसान नहीं है। छोटे-छोटे शहरों में भी बडे-बडे मॉल खुल चुके है और आदमी की स्थिति उस बच्चे की हो गयी है हर सामान देखकर मचल उठता है और पूरा बाजार खरीद लेना चाहता है। विरले ही कोई मिले जो अकबर इलाहाबादी की तरह कह सके- दुनिया में हूँ, दुनिया का तलबगार नहीं हूँ। बाज़ार से गुजरा हूँ खरीददार नहीं हूँ। या कुँवर नारायण की तरह संतई मुद्रा में कह सके, ''बाजार एक ऐसी जगह है/ जहाँ मैंने हमेशा पाया है/ एक ऐसा अकेलापन जैसा मुझे/ बड़े-बड़े जंगलों में भी नहीं मिला/ और एक खुशी/ कुछ-कुछ सुकरात की तरह/ कि जितनी ढेर सी चीजें/ जिनकी मुझ कोई जरूरत नहीं!।''[1]

सबसे चिन्ताजनक बात है कि आज सर्वहारा तथा गरीबों के हित की चिन्ता करने वाली विचारधारा कमजोर पड़ चुकी है। हिन्दीभाषी क्षेत्रों में कम्यूनिज़्म का आन्दोलनकारी रूप समाप्त हो चुका है तथा दलित आन्दोलन भी कठिन दौर से गुजर

* एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, मारवाड़ी कॉलेज दरभंगा (बिहार) भारत

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

रहा है। इन क्षेत्रों में कम्यूनिस्ट विचारधारा के प्रचार-प्रसार में कामरेडों के साथ-साथ प्रेमचन्द, राहुल सांकृत्यायन, यशपाल तथा नागार्जुन आदि साहित्यकारों की भूमिका अहम रही। इनमें नागार्जुन इसलिए महत्वपूर्ण है कि इन्होंने अपनी वैचारिक प्रतिबद्धता के तहत सामन्तवादी शक्तियों से साहित्यिक मोर्चों पर मुठभेड़ करने के साथ-साथ जन आन्दोलन में भी सक्रिय भूमिका निभायी। उन्हें सर्वहारा की पीड़ा का गहरा एहसास था तथा उस पीड़ा के एहसास को आक्रोश तथा प्रतिहिंसा में बदलने वाला विचार दर्शन भी उनके पास थे। इसी दर्शन के आलोक में उन्होंने 'हरिजन गाथा' जैसी कविताएँ लिखीं तथा उसी विचारधारा के तहत् पूरे विश्व में चल रहे सर्वहारा आन्दोलन तथा कम्यूनिस्ट विचारधारा के समर्थन में लूशून जैसी कविता लिखी, ''कलम से काम लो गदा का तमंचा का/ ढीला न पड़े डोर प्रत्यंचा का। जहरीले साँपों पर दया मत करना/ इस तरह श्रमशील जनों को दे गए हो सीख/ क्यों कोई माँगे प्रभुओं से भवता की भीख।''[2]

अपनी वैचारिक प्रतिबद्धता के तहत ही उन्होंने सर्वहारा के हित में अन्न को ब्रह्म का सम्मान दिया-अन्न ब्रह्म ही ब्रह्म है बाकी ब्रह्म पिचाश। दूसरी ओर बहुजन समाज के हित साधन में किसी दैविक शक्ति, धर्म तथा ईश्वर की भूमिका का निषेध किया, ''कल्पना के पुत्रा हे भगवान/ चाहिए मुझको नहीं वरदान/ दे सको तो मुझे दो शाप/ प्रिय मुझे है जलन, प्रिय संताप।''[3]

वैचारिक प्रतिबद्धता तथा जन पक्षधरता के कारण ही उनकी तात्कालिक कही जाने वाली बहुत सी कविताएँ आज के संकट-ग्रस्त समय में अधिक सार्थक हो उठी है। उनकी तात्कालिक कविताओं में राजनीति व्यंग्य की प्रधानता है। आजादी के साथ ही जिस प्रकार राजनीति में मूल्यहीनता आयी, उसे स्वार्थसाधन की सीढ़ियाँ बनायी गयी, बहुजन समाज की उपेक्षा हुई और आजादी के उद्देश्यों को भुला दिया गया उससे नागार्जुन आक्रोशित थे। उन्होंने राजनैतिक मूल्यहीनता के लिए किसी और को नहीं गाँधी के अनुयायियों को ही उत्तरदायी ठहराया, ''बापू के भी ताउ निकले तीनों बन्दर बापू के/ सरल सूत्रा उलझाऊ निकले तीनों बन्दर बापू के।''

ऐसा राजनीति व्यंग्य लिखने वाले नागार्जुन हिन्दी के एक मात्रा साहित्यकार हैं। नागार्जुन की ये कविताएँ आज प्रश्न करती है कि क्या साहित्यकार को राजनीति का पिछलग्गू होना चाहिए या उसे प्रतिपक्ष की भूमिका निभानी चाहिए ? महंगाई से त्रास्त आज जनता की पीड़ा असहनीय हो चुकी है। परन्तु ऐसे जन सरोकार के मुद्दे को उठावे कौन ? बहुमत की सरकार मस्त है और प्रतिपक्ष पस्त। नागार्जुन ऐसी संकट की घड़ी में कभी चुप नहीं रहे। राजनीति के क्षेत्रा में उनका काव्यात्मक हस्तक्षेप कहीं तो प्रतिहिंसा का रूप ले लिया है और कहीं मार्मिक व्यंग्य का, ''फटे वस्त्रा हैं, घर से बाहर निकलेगी कैसे जलवन्ती/ शर्म न आती मना रहे वे महंगाई की रजत जयन्ती।''

जन सरोकार से संबंध रखनेवाली विचारधारा हर युग में सक्रिय रही है परन्तु हर युग में नागार्जुन नहीं जो दोनों हाथ ऊपर कर शतधा प्रतिबद्ध होने की बात करे, ''प्रतिबद्ध हूँ, जी हाँ प्रतिबद्ध हूँ/ बहुजन समाज की अनुप प्रगति के निमिन्त/ संकुचित 'स्व' की आपाधापी के निषेधार्थ/ अविवेकी भीड़ की भेड़िया धसान के खिलाफ/ प्रतिबद्ध हूँ, जी हाँ शतधा प्रतिबद्ध हूँ।''[4]

समकालीन संकट की गिरफ्त में केवल वैचारिकी ही नहीं है, मानवीय संवेदना, सौन्दर्य चेतना, सांस्कृतिक चेतना कल्पना और मानव-प्रकृति संबंध भी कठिन दौर से गुजर रहा है। उपभोक्तावादी संस्कृति, बाजारवाद, पूँजीवाद तथा अधिक से अधिक धन कमाने की लालसा- स्पर्द्धा ने मानव को संवेदनशून्य तथा असहज बना दिया है। बहुत पहले ही तारसप्तक की कवयित्री कीर्ति चौधरी ने इस मानवीय दुर्घटना की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया था, ''जो भी हो संघर्षों की बात तो ठीक है/ बढ़ने के लिए/ यही तो एक लीक है/ फिर भी दुःख-सुख से यह कैसी निस्संगता/ कि किसी को कड़ी बात कहो/ तो भी वह बुरा नहीं मानता/ यह कैसा वक्त है।'' हमारें संवेदन तंतुओं को कुचल डालने के प्रति, आलोचक-कवि परमानन्द श्रीवास्तव ने भी आगाह किया था, ''आज का यथार्थ यह है कि मुक्त बाजार के हल्ले में बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ हमारे यहाँ से हमारे लिए अखबार निकालने जा रही है और आर्थिक विस्तार के संचार साधनों का विस्फोट हमें भावना, कल्पना, संवेदना विचार से मुक्ति दिलाने के नये रास्ते खोज रही है। इस खतरनाक राजनीति पर लोग चुप हैं- अक्सर मुग्ध और चकित भी। आत्मसंतुष्टि का नशा साहित्य संस्कृति को अछूता नहीं छोड़ गया है।''[5] जब से बड़ी-बड़ी कम्पनियों में पैकेज पर नौकरी देने की व्यवस्था हुई है, स्थिति और गंभीर हुई है। पैसे की चाहत ने उसे मशीन बना दिया है, उसकी संवेदनाएँ सूख गयी है। अपने जीवन में सफल

समझे जानेवाले ऐसे ही इंसान की दयनीय हालत पर फिराक गोरखपुरी ने लिखा होगा, ''जो दुनिया में कामयाब है उनको क्या कहिए/ है इससे बढ़कर भले आदमी की क्या तौहीन।''

नागार्जुन की अनेक कविताएँ सघन ऐन्द्रिकता तथा जीवन के मूल राग से संबंधित है जो आज के व्यक्ति की निस्संगता पर चोट करती है। हिन्दी-उर्दू कविता का एक दौर ऐसा भी आया जब काव्य क्षेत्रों से प्रेम तथा भावुकता को दरकिनार करने का प्रयास किया तथा ''और भी गम है मुहब्बत के सिवा'' को कम्यूनिस्ट विचारधारा में मूलमंत्र स्वीकार कर लिया गया। ऐसे समय में भी नागार्जुन ने अपने को 'तरल आवेगों वाला' तथा 'हृदयधर्मी कवि कहा।' आज के उद्दाम कामुकता के दौर में जबकि संस्कार तथा प्रचलित मान्यताओं को रूढ़ि कहकर उससे छुटकारा पाने की बेताबी है, वैवाहिक संबंध अस्थायी कांट्रेक्ट का रूप ग्रहण करने लगा है, ऐसे कठिन समय में नागार्जुन की दाम्पत्य प्रेम की कविता संकट का विलोम उपस्थित करती है, ''मरूँगा तो चिता पर दो फूल देंगे डाल/ समय चलता जाएगा निर्बाध अपनी चाल/ सुनोगी तुम तो उठोगी हूक/ मैं रहूँगा सामने (तस्वीर) में पर मूक/ सांध्य नभ में पश्चिमांत समान/ लालिमा का जब करूण आख्यान/ सुना करता हूँ सुमुखि उस काल/ याद आता है तुम्हारा सिन्दूर तिलकित भाल।''

नागार्जुन की प्रकृति- प्रेम की कविताएँ भी आज पहले से अधिक सार्थक लगने लगी है क्योंकि मानव-प्रकृति संबंध भी कठिन दौर से गुजर रहा है। अपने विकास क्रम में मानव प्रकृति से दूर होता चला जा रहा है। वनों के स्थान पर कंक्रीट के जंगल फैल जाने से पर्यावरण संकट में है, जो केवल पर्यावरणविद्, वैज्ञानिकों तथा नेताओं की चिन्ता का कारण नहीं है, जन सरोकार से संबंध रखने वाले साहित्यकार के लिए भी चिन्ता की बात है। अपनी इसी चिन्ता के तहत कवि ज्ञानेन्द्र पति ने मानव को 'लुप्त होती प्रजातियों के अन्तिम वंशधर' कहा है तो एक दूसरे कवि विनोद कुमार शुक्ल ने प्रकृति के प्रति रागात्मक संबंध को जीवित रखने के अपने कमरे में पूरे जंगल की तस्वीर लगा ली- ''प्रकृति में/ मैं शहरी आदमी/ अजीब तरीके से खोया/...../ मैंने अपने कमरे में पूरे जंगल की तस्वीर लगा रखी है।''[6] इन कवियों की तरह नागार्जुन ने पर्यावरण संकट या प्रकृति से निस्संगता के प्रति चेताया नहीं है। उन्होंने मानवीय संवेदना को जाग्रत करने वाली प्रकृति के नाना रूपों तथा बिम्बों को शब्द बद्ध कर दिया है। बादल को घिरते देखा, बरफ पड़ी है, ऋतुसंधि, मेघ बजे, धनकुरंग, फूले कदम्ब, अब के इस मौसम में, मेरी भी आभा है इसमें, फसलें, फिसल रही चांदनी, जाग रहे जंगल में, शिशिर निशा, भर रहा है चमक, सोनिया समंदर, शायद कोहरे में नमी दीखे, बादल भिगो गए रातोरात आदि कविताएँ बड़े महत्वपूर्ण है। एक प्रतिबद्ध कवि का, प्रकृति के आंगन में, इस तरह की आवाजाही यह दर्शाता है कि प्रकृति मानव-जीवन का अभिन्न अंग है। उनकी प्रकृति की यह विशेषता है कि वह हमें ग्राम्य संस्कृति- कृषक संस्कृति तथा मिथिला की लोक संस्कृति की भी पहचान कराती चलती है। उनके यहाँ आम और लीची के साथ-साथ कटहल और ताल मखाना भी है। डॉ0 राम विलास शर्मा ने ठीक ही कहा है कि उनकी कविताएँ लोक संस्कृति के इतना नजदीक है कि उन्हीं का एक विकसित मालुम होती है। आज भू-मंडलीकरण, उदारीकरण के दौर में लोकभाषा तथा लोक संस्कृति भी संकट ग्रस्त है। इस समकालीन संकट के आलोक में नागार्जुन की कविताओं का पुनर्पाठ एक जरूरी तथा बहुअयामी हस्तक्षेप होगा।

संदर्भ ग्रंथ

[1]'बाजारों की तरफ भी' प्रतिनिधि कविताएँ, राजकमल प्रकाशन

[2]न

[3]लू -सुन, नागार्जुन की प्रतिनिधि कविताएँ, राजकमल प्रकाशन

[4]वही, कविता- कल्पना के पुत्रा हे भगवान

[5]वही, कविता- प्रतिबद्ध हूँ

[6]कविता का अर्थात् लेखक- परमानन्द श्रीवास्तव, आधार प्रकासन, संस्करण-2009, पृष्ठ संख्या 72

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) **9,39-45**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 20 मई 2015

व्यंग्य : उत्पत्ति एवं परिभाषा

डॉ. रमेश टण्डन*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *व्यंग्य : उत्पत्ति एवं परिभाषा* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *रमेश टण्डन* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

आज का समाज जैसे विसंगत, विद्रूप और विकृत अनुभवों का संसार है, व्यंग्य के दर्पण में वैसी ही भयंकर, कुरूप और डरावनी छबियॉ दिखाई देती हैं। सामाजिक यथार्थ और प्रतिबद्धता का लेखन होने के कारण आधुनिक गद्य साहित्य में व्यंग्य, समाज के दलित-शोषित और पीड़ित लोगों के लिए, उनके अधिकारों के लिए और उनकी स्वायत्तता के लिए जिस न्यायपूर्ण संघर्ष की अगुवाई करता है उसे विभिन्न साहित्यिक विधाओं में पहचाना और परखा जा सकता है।

प्रारम्भ में पद्यमय गाली के बहाने व्यंग्य लेखन किया गया जो धीरे-धीरे समाप्त हो गया। अब व्यंग्य-लेखन का कार्य अमानवीय तत्वों को उखाड़ फेंकने के लिए किया जाता है। ''लैटिन साहित्य में व्यंग्य लेखन पद्यमय निबंध में गाली-गलौज के रूप में प्रारम्भ हुआ। शनैः शनैः इसका गाली-गलौज रूप समाप्त हो गया। व्यंग्य में आलंबन के विकृत रूप का मजाक उड़ाया जाता है अथवा उसकी समानता किसी हास्यास्पद अथवा असामाजिक तत्व में बचन-वैदग्ध की सहायता से की जाती है।''[1] श्री रामरतन भटनागर के निम्न कथन से व्यंग्य के आरम्भिक स्वर में पद्य होने की पुष्टि होती है, ''माइकेल के मेघनाद-वध (1861 ई.) मध्ययुग के साहित्य को आधुनिक साहित्य से अलग करता है क्योंकि उनका कंठ पुराण विरोधी अपरम्परावादी और मानववादी होने के कारण नई सांस्कृतिक चेतना के विद्रोह और अस्वीकार को स्पष्टतः मुखर करता है। इस रचना के बाद भारतवर्ष के कवियों के लिए पुराण कथाओं को नए युग की दृष्टि देना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी हो गया था।''[2]

उन्नीसवीं सदी में भारत के महापुरूषों ने समाज को एक नई दिशा देने एवं तत्कालीन स्तर ऊँचा उठाने में जो सुधार कार्य किए वह व्यंग्य लेखन के रचनात्मक पहलू के अन्तर्गत आता है। राजाराम मोहनराय एवं स्वामी दयानंद सरस्वती द्वारा किये गये क्रमशः ब्रह्म समाज एवं आर्य समाज की स्थापना के उद्देश्य दलित, पतित सामाजिक विचारों को नष्ट कर एक नयी क्रांति लाना था जो आज के व्यंग्य का 'नींव का पत्थर' है। ''राजाराम मोहनराय ने यूरोपीय विचारधारा के प्रगतिशील तत्वों को पहचाना और उसे भारतीय रूप देने का प्रयत्न किया। उन्होंने सर्वप्रथम सती प्रथा को बंद किया। उन्होंने बताया कि बंगाल में सती प्रथा दस गुनी अधिक है जिसका कारण बहु-विवाह प्रथा है। बहु-विवाह का कारण नारी जाति का संपत्ति के अधिकार

* सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, महात्मा गांधी शासकीय कला एवं विज्ञान महाविद्यालय [खरसिया] रायगढ़ (छत्तीसगढ़) भारत। E-mail : rameshktandan@gmail.com

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

से वंचित रहना है। पिता अपनी पुत्री के लिए आर्थिक स्वावलंबन ढूंढता है तथा पति अपनी संपत्ति सुरक्षित रखने के लिए पुत्र-प्राप्ति के लिए कई शादियॉ की छूट पा लेता है। वस्तुतः यह क्रांतिकारी विचार था जिसे पिछले सुधारक भूल गए थे। यही कारण था कि नारी को अन्य अधिकार मिले लेकिन उसे साम्पत्तिक अधिकार स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद ही प्राप्त हुए।''[3]

प्रो. देवेश ठाकुर ने स्वामी दयानंद सरस्वती के व्यंग्यमयी आरम्भिक स्वर को इस प्रकार रखा, ''आर्य समाज में क्रांति, अंग्रेजों के कार्य और व्यवहार की स्पष्ट प्रतिक्रिया तथा हिन्दुत्व की स्थापना का प्रयत्न विशेष था। स्वामी दयानंद द्वारा ही अस्पृश्यों को अस्पृश्य न मानकर हिन्दू जाति का एक अंग स्वीकार किया गया। उनके द्वारा चलाए गए शुद्धि आंदोलन में दूसरे धर्मों से हिन्दू धर्म में दीक्षित करने की योजना ने शोषित और उपेक्षित हिन्दुओं द्वारा धर्म-परिवर्तन की प्रवृत्ति पर काफी रोक लगा दी। उन्होंने ईश्वर के एकत्व की स्थापना करके मूर्तिपूजा का विरोध किया। सामाजिक समस्याओं के अन्तर्गत उन्होंने नारी-शिक्षा, बाल-विवाह तथा पुरूष के सम्मुख नारी की अधीनता के प्रश्न को उठाया और नारी को समाज में पुरूष के समान स्थान दिलाने की दिशा में प्रयत्न किए।''[4]

व्यंग्य की उत्पत्ति और उसके कारणों की चर्चा करते हुए प्रसिद्ध व्यंग्य समीक्षक प्रो. सिद्धनाथ कुमार ने लिखा है कि, ''चार्ल्स लैम्ब ने कहा था, 'कब्र के पत्थरों पर व्यंग्य अंकित नहीं होता।' बात सही है व्यंग्य समकालीन जीवन की अनचाही स्थितियों से जन्म लेता है। हम जो चाहते हैं उसके मेल में जब हमारा यथार्थ नहीं होता, तब हमारे भीतर असंतोष होता है, आक्रोश जन्म लेता है, और उन्हीं से व्यंग्य की अभिव्यक्ति होती है। व्यंग्य आदर्श और यथार्थ की टकराहट से फूटी हुई चिनगारी है। आज हमारे राजनैतिक और सामाजिक जीवन में इतनी और ऐसी विसंगतियॉ हैं कि जनजीवन उनसे विक्षुब्ध और त्रस्त है। इसी जनजीवन की चेतना व्यंग्य के रूप में रचनाकारों के माध्यम से अभिव्यक्ति पा रही है।''[5] राजनैतिक एवं सामाजिक विसंगतियों से ही नहीं न्यायिक अव्यवस्था या सुरक्षा व्यवस्था की असफलता से भी व्यंग्य की उत्पत्ति होती है। प्रसिद्ध व्यंग्यकार स्विफ्ट के अनुसार, ''हमारी कानून व्यवस्था की कमियों को देखते हुए यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि अनेक अपराध जो दिन दहाड़े किए जाते हैं, चालाकी एवं धूर्तों के हथकण्डों के कारण कानूनी रूप से दण्डित नहीं किए जाते..... मेरा यह सोचना नितांत स्वाभाविक है कि इन्हीं कानूनी की सहायता करने के लिए विश्व में व्यंग्य का प्रारम्भ हुआ होगा ताकि वे लोग अपने कर्त्तव्य पथ पर आ सकें जिनको न धर्म का भय है, न नैतिकता का मूल्य है और न दण्ड का डर है। हो सकता है कि ऐसे लोगों का व्यंग्य द्वारा पर्दाफाश किया जाय और वेशर्म खाकर मानवता को नष्ट करने से रोके जा सकें।''[6] व्यंग्य प्रयोग के प्रारम्भ के संबंध में डॉ. बरसाने लाल चतुर्वेदी जी लिखते हैं, ''कानूनों की कमियों एवं अपराधियों की होशियारी के कारण सभी अपराधियों को दण्डित नहीं किया जाता। यही कारण है कि व्यंग्य का प्रयोग प्रारम्भ हुआ ताकि उन अपराधियों को समाज की नजरों में गिराया जाये जिन्हें धर्म तथा दण्ड का भय अपराध करने से नहीं रोक पाता।''[7]

व्युत्पत्ति

व्यंग्य के क्षेत्र में एक शब्द आता है- Suturge, जिसका प्रयोग, सन् 65 ई.पू. में रोम में होता था एवं ऐसे अमर्यादित नाटकों के लिए होता था जिसकी सीमा कह नहीं सकते। ''व्यंग्य का मूल, लॉटिन Satira (सटेरिया) शब्द से खोजा गया है बाद में उसका रूप Sutura (सुटुरा) हो गया।''[8] जुबेनल के अनुसार, ''व्यंग्य के लिए 'Olla Potrida', 'Mish-Mash' और 'Farrago' जैसे पंचमेल शब्दों का प्रयोग किया गया है।''[9] 'बेवकूफी का कोर्स' के पृष्ठ 5 में सत्यपाल सिंह सुष्म लिखते हैं कि ''एक विचित्र प्रकार के जंतु 'सर्टरस' के आधार पर अंग्रेजी का 'सैटायर', उर्दू में 'हजो' और हिन्दी में 'व्यंग्य' के नाम से जाना जाता है। डॉ. अनुसूया अग्रवाल ने व्यंग्य को विभिन्न भारतीय भाषाओं में इस प्रकार उच्चारित किया है, ''हिन्दी में जिसे 'सटायर' के अर्थ में 'व्यंग्य' कहते हैं वह गुजराती में 'कटाक्ष', मराठी में 'उपरोध' और उर्दू में 'तन्स' या 'इसो' के रूप में रूढ़ हो गया है।''[10] प्रो. श्रीमती आशा सिंह ने इसकी व्युत्पत्ति के संबंध में कहा, ''व्यंग्य शब्द 'वि' उपसर्ग एवं 'ण्यत्' प्रत्यय को 'अंज धातु में लगाने से बनता है।''[11] ''हिन्दी साहित्य कोश में वि + अंग = व्यंग से व्यंग्य की निर्मिती बताई गई है।''[12]

अर्थ

विभिन्न विद्वानों ने 'व्यंग्य' शब्द के अर्थ को बाह्य रूप से अलग- अलग व्याख्यायित किया है परन्तु मूल रूप में एक ही उद्देश्य को इंगित करता है। डॉ. रमेशचन्द्र महरोत्रा ने इस प्रकार विरोधा भाषित व्याख्यान दिया है, '''व्यंग्य' में 'व्यंजना' वाली 'अंज्' धातु है। 'व्यंग्य' अभिधा और लक्षणा से आगे होता है। इसे 'शब्दकोश' और 'व्याकरण' नहीं पकड़ सकते। यह कहीं 'घाव' करता है, कहीं 'भरता' भी है।''[13] आपने यह भी स्पष्ट किया कि, '''व्यंग्य' में 'वि' उपसर्ग के बाद 'व्यक्त करना', 'प्रकट करना', 'प्रस्तुत करना', 'स्पष्ट करना', 'सफाई करना', 'लिपाई करना' आदि अर्थों वाली 'अंज' धातु है।''[14] डॉ. अनुसूया अग्रवाल ने 'व्यंग्य' के रूप Sutura (सुटुरा) को सम्मिश्रण या गड़बड़झाला के अर्थ के रूप में पेश किया है।''[15]

डॉ. बापूराव देसाई ने व्यंग्य के अनेक अर्थ बताये, जो निम्नानुसार है- ''(1) विवक्षा के द्वारा निर्देश, (2) गूढ़ या अप्रत्यक्ष इंगित के द्वारा निर्देश, (3) सांकेतिक अर्थ, (4) व्यंजना शक्ति द्वारा निर्देशित अर्थ।''[16]

''व्यंग्य को ताना या उपालम्भ के अर्थ में भी लिया जाता है।''[17] डॉ. गणेश खरे ने व्यंग्य के समानार्थी परन्तु सूक्ष्म अर्थभेद निम्न प्रकार बताया, ''व्यंग्य - Irony; कटाक्ष - Sarcasm; चुटकी - Twit; ताना - Taunt; विडम्बना - Mockery''[18]

परिभाषा

विभिन्न विद्वानों ने व्यंग्य को शब्दों के विभिन्न रूपों में पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है। इस संबंध में शरद जोशी ने कहा है कि, ''व्यंग्य हास्य का दायरा इतना विशाल और संभावनायें इतनी अनन्त हैं कि इस मामले में हर नाज और अंदाज को पूरा अवसर दें। उसे उसके भरोसे छोड़ा जा सकता है। हम किसी भी मामले में किसी अंतिम नतीजे तक क्यों पहुँचे ? जब हजारों समस्याएँ हैं तो सौ हास्य व्यंग्य लेखकों के दृष्टिकोण संभव है।''[19]

व्यंग्य के शीर्षस्थ आधार स्तंभ हरिशंकर परसाई के अनुसार, ''व्यंग्य जीवन से साक्षात्कार करता है, विसंगतियों, मिथ्याचारों और पाखण्डों का पर्दाफाश करता है।''[20]

कृष्णचंदर के अनुसार, ''व्यंग्य ही वो तेज नश्तर है जिससे लेखक और कवि समाज के नासूर के गंदे फोड़े खोलता है और उसे स्वास्थ्य, शक्ति और प्रगति की ओर बढ़ाने की चेष्टा करता है।''[21]

डॉ. भानुदेव शुक्ल के अनुसार, ''व्यंग्य अथवा उपहास, साहित्यकार के हाथ का वह चाबक है जिसकी मार से व्याकुल होकर व्यक्ति, संस्था अथवा समाज सही मार्ग पर चलने को बाध्य किया जाता है।''[22]

डॉ. बापूराव देसाई के अनुसार, ''व्यंग्य एक दुर्बीन है जिसमें से विकृति, विसंगति, अत्याचार, अन्याय, भ्रष्टाचार आदि को स्पष्टता से देख सकते हैं।''[23]

डॉ. सुरेश गौतम के अनुसार, ''माला बनाने के लिए फूलों का सीना छेदना ही व्यंग्य है।''[24]

चन्द्रप्रकाश बाजपेयी के अनुसार, ''जिस तरह आईना हमारी कुरूपता और सौन्दर्य को दिखाता है उसी तरह व्यंग्य समाज की विद्रूपताओं और विसंगतियों को साकार करता है।''[25]

व्यंग्यकार स्विफ्ट के अनुसार, ''व्यंग्य एक ऐसा आईना है जिसमें दूसरों की मुख- मुद्राओं को देखते हुए लेखक अपने मुख को भी प्रतिबिम्बित होते हुए देखता है और व्यंग्य के कारण लेखक एकान्त में मुस्करा उठता है, किन्तु उसे अधिक परिहासात्मक कार्य भी करना होता है व्यंग्य दूसरों को भी हँसने में भी सहायता पहुँचाता है।''[26] पुनः आपने कहा, ''व्यंग्य वह दर्पण है जिसमें देखने वालों को अपने साथ-साथ दूसरों की शक्लें भी दिखाई देने लगती है। इसी वजह से विश्व में व्यंग्य को पसंद किया जाता है तथा अत्यल्प लोग इससे स्वयं को पीड़ित अनुभव करते हैं।''[27]

स्नेहलता पाठक के अनुसार, ''व्यंग्य एक प्रकार का शीशा है, जिसमें देखने वाले को अपने मुँह को छोड़ प्रत्येक का मुँह दिखाई देता है।''[28]

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार, ''व्यंग्य वह है जो जहाँ कहने वाला अधरोष्ठ में हँस रहा हो और सुनने वाला तिलमिला उठा हो और फिर कहने वाले को जवाब देना अपने को और भी उपहासास्पद बना लेना हो जाता है।''[29]

डॉ. रमेशचन्द्र महरोत्रा के अनुसार, ''व्यंग्य चमत्कारपूर्ण होता है, कटाक्ष युक्त होता है। यह किसी को मीठा लगता है और आनन्द देता है, किसी को कड़वा लगता है और तिलमिला देता है। यह कमियों को उजागर करने वाला प्रकाश परावर्तक होता है और सुधार करने वाला कोंचक हथियार होता है।''[30]

अन्तर्यामी प्रधान के अनुसार, ''व्यंग्य कोई गॉव की गोरी, पनघट, अलहड़ यौवन, मेहन्दी के रंग, कजरा- मुहब्बत वाला जैसी शृंगार रस की कोई चीज तो है नहीं, जिसको आप देखें और तारीफ करने लग जायें, यह तो व्यंग्य है श्रीमान्, बबूल के कॉटे या कड़वी नीम कह लीजिए - स्वाद कड़वा किन्तु खाइए तो अमृत की तरह गुणकारी, इसलिए इसे कड़वा कहकर नकारिए नहीं।''[31]

प्रो. श्रीमती आशा सिंह के अनुसार, ''व्यंग्य हमारे जीवन में एक टॉनिक की तरह काम करता है, व्यंग्य के प्रभाव से सम्पूर्ण समाज में एक ऐसी सुखद यात्रा की शुरूआत हो सकती है जो त्रिकाल विजयी है।''[32]

सुबोध कुमार श्रीवास्तव के अनुसार, ''व्यंग्य वह है जो पाठक के बहिरंग को तो हॅसने के लिए बाध्य कर देता है, किन्तु उसका अन्तर उसी की हॅसी को स्वीकार नहीं कर पाता और एक अनकही चूभन महसूस करता है।''[33]

डॉ. प्रभाकर माचवे के अनुसार, ''मेरे लिए व्यंग्य कोई पोज या अन्दाज या लटका या बौद्धिक व्यायाम नहीं पर एक आवश्यक अस्त्र है। सफाई करने के लिए किसी को तो हाथ गन्दे करने ही होंगे, किसी न किसी को तो बुराई अपने सर लेनी ही होगी।''[34]

कन्हैया लाल नंदन के अनुसार, ''व्यंग्य आक्रोश का उबलता हुआ तूफान नहीं है, पीड़ा और आक्रोश का संयमपूर्ण सृजन है- हॉ संयमपूर्ण सृजन। जहॉ आदमी आक्रोश से पागल नहीं हो जाता वह अपने आक्रोश को पिघले हुए तांबे के रूप में तपाकर रचनात्मक सांचे में ढालता है, ताकि विकृति चौराहे पर नंगी खड़ी की जा सके।''[35]

देवराज दिनेश के अनुसार, ''व्यंग्य, समाज की दुर्व्यवस्था को दूर करने के लिए नश्तर का काम करता है; हास्य, पीड़ित मन को गुदगुदाता है, खिलखिलाता है। दोनों का मिश्रण तीखेपन और मिठास का मिश्रण है।''[36]

डॉ. शेरजंग गर्ग के अनुसार, ''व्यंग्य एक ऐसी साहित्यिक अभिव्यक्ति या रचना है जिसमें व्यक्ति तथा समाज की कमजोरियों, दुर्बलताओं, करनी एवं कथनी के अंतरों की समीक्षा अथवा निंदा भाषा की भंगिमा देकर अथवा पूर्णतः सपाट शब्दों में प्रहार करते हुए गंभीर हो सकती है, निर्दय लगते हुए दयालु हो सकती है, मखौल लगती हुई बौद्धिक हो सकती है, अतिशयोक्ति एवं अतिरंजना का आभास देने के बावजूद पूर्णतः सत्य हो सकती है। व्यंग्य में आक्रमण की उपस्थिति अनिवार्य है।''[37]

सुधीर ओखदे के अनुसार, ''व्यंग्य मुझे भगवान श्रीकृष्ण की तरह प्रतीत होता है जो एक तरफ तो सुदर्शन चक्र का वार करता है, वहीं दूसरी तरफ गीता का सार भी बताता है; एक तरफ मुँह खोलकर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के दर्शन कराता है, वहीं दूसरी तरफ कर्मभूमि में समय पड़ने पर सारथी का कार्य भी करता है। व्यंग्य व्यवहार में मुरली जैसा मधुर, चक्र जैसा प्रहारक और नीति में श्रीकृष्ण के न्याय की तरह कठोर भी होता है।''[38]

डॉ. आनंद गौतम के अनुसार, ''उक्ति वैचित्र्य, वक्रता, हिटपावर और हाजिर-जवाबी व्यंग्य की भाषा की अपनी विशेषताएँ हैं। भाषा का खुरदुरापन भी उसमें पाया जाता है, यह खुरदुरापन बारीक, तीक्ष्ण, नुकीले, कॉच की किरचों के समान होता है जो एक बार चुभ जाने पर भीतर प्रवेश करता चला जाता है।''[39]

हार्वे के अनुसार, ''व्यंग्य वह पद्य अथवा गद्यात्मक रचना है जिसके द्वारा विद्यमान दुर्गुण अथवा मूर्खताओं को निन्दित किया जाता है।''[40]

डॉ. इन्द्रनाथ मदान के अनुसार, ''व्यंग्य एक साहित्यिक कला है जो विषय या वस्तु को उपहास बनाकर इसे घटाती है और इसके लिए मनोरंजन, घृणा, रोष या तिरस्कार की दृष्टि पैदा करती है।''[41]

डॉ. कृष्णदेव झारी के अनुसार, ''हास्य में जब आलम्बन के प्रति सहानुभूति या अनुराग की भावना रहती है तो वह शुद्ध हास्य माना जाता है। जब हास्य में कटुता आ जाती है तो वह व्यंग्य कहलाता है।''[42]

अन्तर्यामी प्रधान के अनुसार, ''व्यंग्य में हास्य की मात्रा इतनी ही होनी चाहिए, जितनी कि कड़वी गोलियों को गले से उतारने के लिए उन पर शक्कर की परत चढ़ाई जाती है। सीधा व्यंग्य इतना तीखा हो जाता है कि उसकी धार को आदमी बर्दाश्त नहीं कर पाता; हॅसते-हॅसते कड़वी दवा पिला दी जाये तो आदमी आसानी से गुटक लेता है।''[43]

शरद जोशी के अनुसार, ''व्यंग्य कमजोर आदमी पर नहीं लिखा जा सकता, उस पर तो हास्य लिखा जा सकता है; व्यंग्य उस पर लिखना चाहिए जो ताकतवर हो और स्थितियों में पूरी क्रूरता के साथ उपस्थित हो।''[44]

नरेन्द्र कोहली के अनुसार, ''क्षोभ का अतिरेक ही कलात्मक संयम के साथ रचना में ढलने पर 'व्यंग्य' बन जाता है।''[45]

प्रो. श्रीमती आशा सिंह के अनुसार, ''परिहास और आलोचना करने की प्रवृत्तियों का एकान्वय जिस स्वभाव में होता है वह व्यंग्यात्मक है।''[46]

ड्राउडन के अनुसार, ''व्यंग्य का सही उद्देश्य दोषों को सुधार के द्वारा संशोधित करना है।''[47]

डॉ. प्रेमनारायण शुक्ल के अनुसार, ''मानव मात्र के सामूहिक सुधार का उद्देश्य लेकर आलोचनात्मक दृष्टिकोण के साथ-साथ विनोद तथा वाक्पटुत्वपूर्ण साहित्य रचना की प्रणाली का नाम उपहास व्यंग्य है।''[48]

डॉ. स्नेहलता पाठक के अनुसार, ''व्यंग्य का मूल उद्देश्य समाज, राष्ट्र और सम्पूर्ण मानवता की मंगल कामना है। व्यंग्यकार यह चाहता है कि हम सबके आसपास फैला अव्यवस्था का दलदल, व्यवस्था का जलाशय बने इसलिए वह एक ऑख से देखता है ताकि अर्जुन की तरह लक्ष्य साधने की ओर उन्मुख हो।''[49]

लू शुन (चीन) के अनुसार, ''व्यंग्य की आत्मा सत्य है। यह जरूरी नहीं कि व्यंग्य की विषयवस्तु वास्तविक घटनाएँ ही हो, ऐसी घटनाएँ भी हो सकती है जो घटने वाली हो। व्यंग्यकर्त्ता सामान्यतः उन लोगों द्वारा तिरस्कारपूर्ण दृष्टि से देखा जाता है जिन पर वह व्यंग्य करता है तथापि उसका उद्देश्य लोगों को शर्मिन्दा करना नहीं बल्कि उन्हें सुधारना होता है।''[50]

डॉ. गणेश खरे के अनुसार, ''जब किसी को चिढ़ाने और दुःखी करने के उद्देश्य से अस्पष्ट शब्दों में आक्षेप किया जाता है तो उसे व्यंग्य कहते हैं।''[51]

डॉ. बापूराव देसाई के अनुसार, ''युग की विसंगतियों की वक्रोक्तिपूर्ण तीखी अभिव्यक्ति व्यंग्य कहलाती है।''[52]

श्याम गोएंका के अनुसार, ''जब आप और हम किसी पर बोली कसते हैं, तब वह गाली होती है; और वही बोली जब अदीब कसता है तब वह व्यंग्य हो जाता है।''[53]

प्रो. आशा सिंह के अनुसार, ''व्यंग्य प्रवृत्ति पर चोट करता है व्यक्ति पर नहीं।''[54]

सुधीर ओखदे के अनुसार, ''व्यंग्य बौद्धिक क्रांति का शंखनाद है।''[55]

हरिशंकर परसाई के अनुसार, ''व्यंग्य एक माध्यम है कोई राजनीतिक पार्टी नहीं, व्यंग्य उजागर और सचेत करता है।''[56]

डॉ. सुरेश माहेश्वरी के अनुसार, ''व्यंग्य अस्वीकार्य स्थिति का वैचारिक एवं अहिंसक विरोध है।''[57]

व्यंग्य या व्यंग

'व्यंग्य' शब्द को उच्चारण की दृष्टि से दो प्रकार से कागज पर उकेरा जा सकता है- 1. व्यंग, 2. व्यंग्य।

वि + अंग = व्यंग का मतलब होता है- शरीर के किसी एक अवयव का न होना अर्थात् कार्य शक्ति में कमी होना जबकि व्यंग्य की तो वास्तव में कार्य शक्ति अधिक होती है। इसके अतिरिक्त व्यंग में वर्तनी संबंधी अशुद्धि है जबकि व्यंग्य शुद्ध है। सार्थक उद्देश्य की पूर्ति नहीं कर पाने एवं अशुद्धिगत कारणों से प्रेरित होकर डॉ. बालेन्दु शेखर तिवारी ने व्यंग की अपेक्षा व्यंग्य के प्रयोग को अधिक समर्थन दिया है। परन्तु इसे एक विडम्बना कहें या शीर्षक तथा कथावस्तु की प्रेरणा कहें कि हरिशंकर परसाई जी के 'दुर्घटना रस' निबंध में व्यंग्य के लिए व्यंग शब्द का प्रयोग भी किया हुआ दिखाई देता है। इसके साथ ही डॉ. वीरेन्द्र मेहरीस्तां ने भी व्यंग्य के स्थान पर व्यंग के प्रयोग का आग्रह किया है।

विधा या धारा

'व्यंग्य विधा है या धारा ?' इस पर विद्वानों में सूक्ष्म- विचारभेद हैं। अधिकांश मूर्धन्य व्यंग्यकारों ने व्यंग्य को मात्र धारा माना है। परसाई जी के अनुसार, ''व्यंग्य कोई विधा नहीं है। इसका अपना कोई स्ट्रक्चर नहीं है। यह एक 'स्प्रिट' है जो हर विधा में आ सकती है, कहानी में, नाटक में, उपन्यास में। बनार्ड शॉ का प्रधान स्वर व्यंग्य है, लेकिन उनका मूल्यांकन नाटक कार के रूप में होता है। व्यंग्य कविता से लेकर उपन्यास तक में आ सकता है।''[58] डॉ. शेरजंग गर्ग भी यही मानते हैं कि

व्यंग्य, उपन्यास आदि के अर्थ में 'स्वतंत्र साहित्यिक विधा' नहीं है। व्यंग्य को विधा का दर्जा दिलाने में पुरजोर कोशिशें की गई हैं। पर्याप्त मात्रा में प्रतिष्ठित रचनाओं की मांग और पूर्ति सफलतापूर्वक की गई है। परन्तु रवीन्द्र नाथ त्यागी जी कहानी, निबंध, उपन्यास इत्यादि को भी विधा मानने से इंकार करते हैं और इन्हें एक धारा मानते हुए गद्य का एक रूप मानते हैं। इन्होंने कई जगह व्यंग्य को एक स्वतंत्र विधा मान लेने पर जोर दिया है, इसके बावजूद ये व्यंग्य को स्वतंत्र विधा नहीं मानते। इनके अनुसार विधा तीन ही है- गद्य, पद्य और नाटक। अब प्रश्न यह उठता है कि यदि सर्वत्र व्यंग्य रचनाएँ ही लिखी जाए तो क्या इसे विधा मान लिया जाए ? डॉ. इन्द्रनाथ मदान के अनुसार यह कि यदि किसी युग पर व्यंग्य का उपयोग हावी हो जाता है तो इसे विधा का दर्जा देना संगत नहीं जान पड़ता। तर्क में आपने कहा, ''भारतेंदु युग के साहित्य में व्यंग्य का उपयोग अधिक हुआ है, लेकिन निबंध की विधा में इसका उपयोग एक उधेश्य को पूरा करने के लिए किया गया है।''[59]

सन्दर्भ सूची

[1]चतुर्वेदी, बरसानेलाल- आधुनिक हिन्दी काव्य में व्यंग्य, पृ. 20
[2]भटनागर, रामरतन- निराला और नवजागरण, पृ. 109
[3]जोशी, चण्डी प्रसाद- हिन्दी उपन्यास- समाजशास्त्रीय विवेचना, पृ 7
[4]ठाकुर, प्रो. देवेश- आधुनिक हिन्दी साहित्य की मानवतावादी भूमिकाएँ, पृ 124
[5]कुमार, डॉ. सिद्धनाथ- कमाल कुर्सी का (दो शब्द से)
[6]चतुर्वेदी, बरसाने लाल- आधुनिक हिन्दी काव्य में व्यंग्य, पृ 20
[7]चतुर्वेदी, बरसाने लाल- आधुनिक हिन्दी काव्य में व्यंग्य, पृ 20
[8]पाठक, डॉ.विनय कुमार एवं अन्य (संपादक)- हिन्दी व्यंग्य कर्म एवं समकालीन परिदृश्य, पृ 23
[9]पाठक, डॉ.विनय कुमार एवं अन्य (संपादक)- हिन्दी व्यंग्य कर्म एवं समकालीन परिदृश्य, पृ 23
[10]पाठक, डॉ.विनय कुमार एवं अन्य (संपादक)- हिन्दी व्यंग्य कर्म एवं समकालीन परिदृश्य, पृ 23
[11]पाठक, डॉ.विनय कुमार एवं अन्य (संपादक)- हिन्दी व्यंग्य कर्म एवं समकालीन परिदृश्य, पृ 15
[12]हिन्दी साहित्य कोश, भाग - 1, पृ 804
[13]पाठक, डॉ.विनय कुमार एवं अन्य (संपादक)- हिन्दी व्यंग्य कर्म एवं समकालीन परिदृश्य, पृ 12
[14]पाठक, डॉ.विनय कुमार एवं अन्य (संपादक)- हिन्दी व्यंग्य कर्म एवं समकालीन परिदृश्य, पृ 12
[15]पाठक, डॉ.विनय कुमार एवं अन्य (संपादक)- हिन्दी व्यंग्य कर्म एवं समकालीन परिदृश्य, पृ 23
[16]देसाई, डॉ. बापूराव- स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी व्यंग्य निबंध एवं निबंधकार, पृ 19
[17]खरे, डॉ. गणेश- सामान्य हिन्दी ज्ञान, पृ 96 एवं प्रसाद, डॉ. वासुदेव नन्दन- आधुनिक हिन्दी व्याकरण और रचना
[18]खरे, डॉ. गणेश- सामान्य हिन्दी ज्ञान, पृ 76
[19]जोशी, शरद- विशिष्ट संपादकीय, सारिका- मार्च 1988
[20]परसाई, हरिशंकर- सदाचार का ताबीज
[21]कृष्ण चंदर- सरगम, पृ 51
[22]शुक्ल, भानुदेव- भारतेन्दु युगीन हिन्दी नाटक साहित्य, पृ 144
[23]देसाई, डॉ. बापूराव- स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी व्यंग्य निबंध एवं निबंधकार, पृ 31
[24]पाठक, डॉ.विनय कुमार एवं अन्य (संपादक)- हिन्दी व्यंग्य कर्म एवं समकालीन परिदृश्य, पृ 150
[25]पाठक, डॉ.विनय कुमार एवं अन्य (संपादक)- हिन्दी व्यंग्य कर्म एवं समकालीन परिदृश्य, पृ 10
[26]स्विफ्ट, जोनाथन- बेटल ऑफ बुक्स, पृ 6
[27]स्विफ्ट, जोनाथन- बेटल ऑफ बुक्स, पृ 6
[28]पाठक, डॉ. स्नेहलता- व्यंग्य शिल्पी- लतीफ घोंघी, पृ 122
[29]पाठक, डॉ.विनय कुमार एवं अन्य (संपादक)- हिन्दी व्यंग्य कर्म एवं समकालीन परिदृश्य, पृ 24
[30]पाठक, डॉ.विनय कुमार एवं अन्य (संपादक)- हिन्दी व्यंग्य कर्म एवं समकालीन परिदृश्य, पृ 13

[31]पाठक, डॉ.विनय कुमार एवं अन्य (संपादक)- हिन्दी व्यंग्य कर्म एवं समकालीन परिदृश्य, पृ 27
[32]पाठक, डॉ.विनय कुमार एवं अन्य (संपादक)- हिन्दी व्यंग्य कर्म एवं समकालीन परिदृश्य, पृ 22
[33]श्रीवास्तव, सुबोध कुमार- शहर बन्द क्यों हैं?
[34]माचवे, प्रभाकर- तेल की पकौड़ियाँ, पृ 1
[35]नन्दन, कन्हैया लाल- मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ, पृ 8
[36]दिनेश, देवराज- काठ की हॉढ़ियाँ, पृ 1
[37]गर्ग, शेरजंग- स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता में व्यंग्य, पृ 27-28
[38]ओखदे, सुधीर- राजा उदास है, भूमिका 'संग्रह के बहाने....' से एवं ओखदे द्वारा डॉ. रमेश कुमार टण्डन को लिखे पत्र
[39]पाठक, डॉ.विनय कुमार एवं अन्य (संपादक)- हिन्दी व्यंग्य कर्म एवं समकालीन परिदृश्य, पृ 24
[40]HARVEY : *The Oxford Companion to English Literature,* page-697
[41]मदान, डॉ. इन्द्रनाथ- हिन्दी की हास्य व्यंग्य विधा का स्वरूप और विकास
[42]झारी, कृष्ण देव- वीभत्स रस एवं हिन्दी साहित्य, पृ 131
[43]पाठक, डॉ.विनय कुमार एवं अन्य (संपादक)- हिन्दी व्यंग्य कर्म एवं समकालीन परिदृश्य, पृ 25
[44]पाठक, डॉ.विनय कुमार एवं अन्य (संपादक)- हिन्दी व्यंग्य कर्म एवं समकालीन परिदृश्य, पृ 24
[45]पाठक, डॉ.विनय कुमार एवं अन्य (संपादक)- हिन्दी व्यंग्य कर्म एवं समकालीन परिदृश्य, पृ 13
[46]पाठक, डॉ.विनय कुमार एवं अन्य (संपादक)- हिन्दी व्यंग्य कर्म एवं समकालीन परिदृश्य, पृ 20
[47]पाठक, डॉ.विनय कुमार एवं अन्य (संपादक)- हिन्दी व्यंग्य कर्म एवं समकालीन परिदृश्य, पृ 16
[48]शुक्ल, प्रेमनारायण- हिन्दी साहित्य में विविधवाद, पृ 377
[49]पाठक, डॉ.विनय कुमार एवं अन्य (संपादक)- हिन्दी व्यंग्य कर्म एवं समकालीन परिदृश्य, पृ 26
[50]पाठक, डॉ.विनय कुमार एवं अन्य (संपादक)- हिन्दी व्यंग्य कर्म एवं समकालीन परिदृश्य, पृ 24
[51]खरे, डॉ. गणेश- सामान्य हिन्दी ज्ञान, पृ 57
[52]देसाई, डॉ. बापूराव- स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी व्यंग्य निबंध एवं निबंधकार, पृ 17
[53]गोएंका, श्याम- नसबंदगी, पृ 2
[54]पाठक, डॉ.विनय कुमार एवं अन्य (संपादक)- हिन्दी व्यंग्य कर्म एवं समकालीन परिदृश्य, पृ 21
[55]ओखदे, सुधीर- राजा उदास है, भूमिका 'संग्रह के बहाने....' से
[56]पाठक, डॉ.विनय कुमार एवं अन्य (संपादक)- हिन्दी व्यंग्य कर्म एवं समकालीन परिदृश्य, पृ 15
[57]पंकज, गिरीश- भ्रष्टाचार विकास प्राधिकरण (मुख पृष्ठ के पृष्ठ आवरण से)
[58]परसाई, हरिशंकर- ऑखन देखी, (साक्षात्कार : कमला प्रसाद), पृ 34
[59]मदान, डॉ. इन्द्रनाथ- हिन्दी हास्य- व्यंग्य विधा का स्वरूप और विकास

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) 9,46-52
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 08 जून 2015

बाजार के प्रतिपक्ष की कविता : 21वीं सदी की कविता

डॉ. राधा वर्मा*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *बाजार के प्रतिपक्ष की कविता : 21वीं सदी की कविता* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *राधा वर्मा* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

बाजार की तरफ भागते/ सब कुछ गड्डमड्ड हो गया है इन दिनों यहाँ।[1] निर्मला पुतुल की 'सन्थाल परगना' कविता की ये पंक्तियाँ आज के समय में व्यक्ति की चिंता के मुख्य बिन्दु बाजारवाद की ओर इशारा कर रही है। बाजारू चीजें मनुष्य, समाज और समय को निरंतर तीव्र गति से परिवर्तित कर रही हैं। लोगों को आपस में बाँट रही है, अपनी कीमत से छोटा-बड़ा बना रही है। घर, समाज और व्यक्ति के भीतर तक अपनी जगह बना चुकी है। व्यक्ति पूरी तरह बाजार से प्रभावित है, इस क्रम में बाजार व्यक्ति को मात्र उपभोक्ता में बदल रहा है।

इक्कीसवीं सदी की हिन्दी कविता उपभोक्तावादी संस्कृति को गहराई से पहचानते हुए जानती है कि मानवीय सरोकारों और संवेदना के निरंतर छीजते जाने का कारण बाजार ही है। इस बाजार को पूँजीवादी शक्तियाँ नियंत्रित कर रही हैं। यह कविता इन सभी मनुष्य विरोधी ताकतों के खिलाफ संघर्ष की ज़मीन तैयार करती है, इन से सचेत करवाती है।

बाजारवादी संस्कृति विकासशील देशों के ऊपर हावी हो कर उसे अपने आगोश में ले रही है और पूर्व का मनुष्य उसके रंग में रंगता जा रहा है, यह एक भयावह स्थिति है। आज जिस रफ्तार से अंग्रेजीकरण हो रहा है उससे लगता है कि एक दिन रिश्तों के गहरे अहसास की भाषाएँ अपनी पहचान खो देंगी और इस के साथ समाज और संस्कृति के सारे बंधन टूट जायेंगे। कोई भी भाषा सीखना बुरा नहीं है, बुरा है अपनी भाषा की उपेक्षा करना तथा बाजारवाद और उपभोक्तावादी संस्कृति और आधुनिकता की चकाचौंध में पड़कर अपनी साँस्कृतिक और भाषायी पहचान खो देना; क्योंकि इसी पर किसी देश और इसकी संस्कृति का भविष्य निर्भर करता है। भाषा महज सूचना का माध्यम भर नहीं है, वह मनुष्य और मनुष्यता की पहचान है। अपनी भाषा को किस तरह उपेक्षित बनाया जा रहा है, इस स्थिति से सुनीता जैन की कविता अवगत करवाती है। 'दिल्ली वाले' कविता में सुनीता जैन हिन्दी की जगह अंग्रेजी को तरज़ीह देने वाले लोगों से रू-ब-रू करवाते हुए कहती है :

* सहायक आचार्य (हिन्दी), राजकीय संस्कृत महाविद्यालय [फागली] शिमला (हि.प्र.) भारत। (आजीवन सदस्य)

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

जो पास बैठते ही/ बोलता है अंग्रेज़ी फर्राटे से/ फरफराते फरफराते/ उनसे मिलते हैं दिल्ली में दिल्ली वाले बड़े प्रेम से/ देते हैं सम्मान/ बिठलाते हैं कायदे से/ हिन्दी का क्या/ वह तो भाषा है उनकी/ जो पढ़ते हैं घटिया सरकारी स्कूलों में।[2]

रिश्तों में आत्मीयता, भाषा और संस्कृति को बाजारवाद ने आज पूरी तरह अपने आगोश में ले लिया है। 'सत्तू और सिजलर' कविता में कुमार कृष्ण ने इससे परिचित करवाया है :

दादी नहीं जानती/ किले और कलम की भाषा के बीच से आदमी/ जब लौटता है गाँव की ओर/ वह भूल जाता है पूरी तरह/ हल और हेंगे की भाषा/ उसके पास होती है डरावने सपनों की एलबम/ देश-विदेश के खोटे-सिक्के/ जिनसे नहीं खरीदे जा सकते सुंदर सपने।[3]

सच में, आज रिश्तों में आत्मीयता देखने को नहीं मिलती। इसलिए आज वह भाषा भी खत्म हो रही जिससे रिश्तों की गंध आती थी। गाँव से बाहर जाने के बाद गाँववासी अपनी भाषा को बोलने में शर्म महसूस करता है। वह अपनी भाषा की अपेक्षा अंग्रेज़ी को प्राथमिकता देता है जो कि अपनी भाषा के गायब होने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। आज हमारी पुश्तैनी भाषा यानी हँसने-रोने, हमारे सपनों की भाषा गायब हो रही है। शब्दों द्वारा व्यक्त भाषा का गहरा संबंध समाज तथा व्यक्ति की अपनी रुचि और संस्कार के साथ रहता है। भाषा ही व्यक्ति को एक-दूसरे के करीब लाती है। जिस भाषा का प्रयोग किया जाता है उस में ही हमें उस संस्कृति की झलक देखने को मिलती है। आज बुद्धिपक्ष का तो विकास हो रहा है, हृदय पक्ष का नहीं। हमारी संस्कृति में महत्त्वपूर्ण माने जाने वाले मानवीयता तथा अतिथि-सत्कार जैसे मूल्य भी क्षीण होते दिखाई दे रहे हैं। कुमार कृष्ण 'खूबसूरत घर' कविता की इन पंक्तियों में इससे अवगत करवाते हुए कहते हैं, 'खूबसूरत घरों में/ कोई नहीं करता किसी का इंतजार/ खूबसूरत घरों के लोग करते हैं/ मनुष्य से अधिक अपने सामान से प्यार।'[4]

हमारी संस्कृति अतिथि को भगवान के समान मानती है, परंतु बाजारवाद के प्रभाव से आज मानवीयता का भाव इस कदर खत्म हो चुका है कि मनुष्य से अधिक महत्त्व सामान को दिया जाता है। सामान मूल्यवान हो सकता है पर मनुष्य तो अनमोल है उसे सामान की तरह कहीं से खरीद नहीं सकते। आज मनुष्य सामान और मनुष्य में फर्क करने की क्षमता खो चुका है।

संबंध और भावनाएँ जो भारतीय संस्कृति की एक खास पहचान थी, वह सिमटती जा रही है। ऐसे दौर में कवि अपनी जिम्मेदारी समझता हुआ जीवन के सकारात्मक पक्ष की स्थापना में जुटा है। वह आज के इस भयानक समय की वास्तविकताओं से सहज रूप से अवगत करवाता, गंभीर मुद्दों पर पाठकों को सचेत करता नज़र आता है। खो रही चीजों को भविष्य के लिए सुरक्षित रखने के लिए इसे वह अपनी जिम्मेदारी भी समझता है और जरूरत भी। आज बुजुर्ग किस तरह वक़्त गुजार रहे हैं, ऊब भरे जीवन जीते बुजुर्ग को सुनीता जैन ने 'दो घर' कविता में चित्रित किया है। बुजुर्ग के मुँह से सुनीता जैन का यह कहलवाना इसका उदाहरण है :

आस-पास खड़े हमारे ये दो घर/ कुछ खास तरह से चुप हैं/ पहले विदेश गये मेरे बच्चे/ एक-एक कर/ फिर साथ वाले घर का/ एक ही बेटा इकलौता/ बम्बई गया नौकरी पर/ अब नहीं निकलता अचानक कोई बच्चा दरवाजा खोल/ न ही भाग कर बाहर/ आती कोई बहू, 'रुको बेटों' कहती ! न ही कोई आया या बाई शाम को सैर ले जाती/ दोनों घर खड़े रहते हैं अध सोये से आजकल/ आखिर चार बूढ़े/ दो इधर/ दो उधर/ करें भी क्या सिवाय/ चुनावी खबरें देखने के।[5]

असहाय, अकेले बुजुर्गों को देखते हुए, ऐसी संकुचित सोच के लिए जो रिश्तों से ज्यादा पैसों पर बल देती है और इस अवस्था में उन्हें छोड़ कर चले जाने के लिए जैन ने आज की बाजारवादी मनोवृत्ति को उत्तरदायी ठहराया है।

आज के समय के सच से रू-ब-रू करवाते पुतुल 'सन्थाल परगना' कविता में कहती है, 'सन्थाल परगना/ अब नहीं रह गया सन्थाल परगना/ बहुत कम बचे रह गये हैं/ अपनी भाषा और वेशभूषा में यहाँ के लोग।'[6] बाजारवाद इसके लिए जिम्मेवार हैं। यही नहीं, आज हमारी पुरानी तथा साँस्कृतिक विरासत की चीजें भी धीरे -धीरे लुप्त हो रही हैं यानी बाजार में आज अनेक तरह की चीजें मौजूद हैं, इसलिए इन चीजों का प्रयोग कम हो रहा है। आज के समय में इन चीजों की हालत से अवगत करवाते हुए पुतुल कहती है, 'कायापलट हो रही है इसकी/ तीर-धनुष-माँदल-नगाड़ा-बाँसुरी/ सब बटोर लिये जा रहे हैं लोक संग्रहालय/ समय की मुर्दागाड़ी में लादकर।'[7]

इस बदलाव को देखकर चिंतित पुतुल कहती है, 'उतना भी बच नहीं रह गया 'वह'/ सन्थाल परगना में/ जितने कि उसकी/ संस्कृति के किस्से।'[8] यह बात एक सन्थाल परगना पर ही लागू नहीं होती है। बल्कि आज हमारे देश के सभी परगनों

पर लागू होती है। आज व्यक्ति में पाश्चात्य देशों की तड़क-भड़कपूर्ण संस्कृति व सभ्यता के प्रति आदर की भावना पनपती दिखाई देती है और अपने देश में गौरवपूर्ण इतिहास व संस्कृति को भूलता नज़र आ रहा है। जन्म के समय जो रीति-रिवाज मौजूद थे उस का चित्रण 'माँ' कविता में करते हुए अतीत को याद करते उदय प्रकाश का कवि कहता है :

अपने गाँव में मेरा आना/ एक अजीब-से वाक्य के मध्य में हुआ था/ वह वाक्य जिसक द्वारा मैं पृथ्वी पर संभव हुआ/ उस में कोई क्रियापद नहीं था/ न कोई कर्त्ता, न सहायक क्रिया, न अंत में कोई खड़ी पाई/ जब मैं बोला तो पहले घर और फिर गाँव वालों ने जाना/ कि मैं आ गया हूँ/ इस के बाद ही गाना-बजाना हुआ/ आँगन में चाची और बुआ ने सोहर गाये/ फूफा और भाई ने फोड़े पटाखे/ बहनें सुरसरिया जलाकर तिनगियों के नन्हें-नन्हें फूल बिखेरती/ सारे गाँव में दौड़ती फिर।[9]

आज संस्कार की क्या हालत है ? इसे सुनीता जैन ने 'पार्क में' कविता में पार्क में कुछ बुजुर्गों, एक औरत और उसके बच्चे के माध्यम हुए संवाद से स्पष्ट किया है :

सहसा/ एक छोटा लड़का/ छूता है/ उन तीनों के पैर/ पास खड़ी उसकी माँ/ पूछ रही है, 'कैसी हो आँटी जी ?' बरसते हैं एक साथ/ चकित आशीर्वाद/ सुखी रहो.....जीते रहो।[10]

पैर छूने के बाद बुजुर्ग के मुँह से निकले यह शब्द देखिये जो स्पष्ट बताते हैं कि अपनी संस्कृति को व्यक्ति भूलता जा रहा है :

यह भी तो बहू है भई/ किसी की/ सिखाई है तमीज़/ छोटे-बड़ों की/ आजकल तो अपने भी/ अपनों के दिल्ली में/ पाँव नहीं पड़ते/ पाँव ! राम का नाम लो जी, बात नहीं करते।[11]

ऐसी चीजों का समावेश व्यक्ति के अंदर तभी होगा जब वह ऐसा साहित्य पढ़ेगा, जिस से उचित-अनुचित का अंतर मालूम हो। परंतु पुस्तकों की जगह आज व्यक्ति सिक्कों को महत्त्व देता है। इस में बाजारवाद का स्पष्ट प्रभाव नजर आता है। इसे विश्वनाथ प्रसाद तिवारी की 'पुस्तकें' कविता की ये पंक्तियाँ सामने लाती हैं :

हमें उत्तराधिकार में नहीं चाहिए पुस्तकें/ कोई झपटेगा पासबुक पर/ कोई ढूँढेगा लॉकर की चाभी/ किसी की आँखों में चमकेंगे खेत/ किसी में गड़े हुए सिक्के/ हाय-हाय, समय।[12]

बूढ़ी दादी-सी उदास हो जायेंगी/ पुस्तकें। बाजारवाद से ग्रस्त नयी पीढ़ी उत्तराधिकार में सिक्कों को महत्त्व देती है, किसी भी भावनाओं और सही दिशा देने वाली चीजों से उन्हें कोई मतलब नहीं।

आज बाजारवाद किस कदर हावी है, इसे सुनीता जैन ने बखूबी रेखांकित किया है। संवेदनहीन होते जा रहे इंसान को विभिन्न संदर्भों में दिखाते 'पत्नी को ई मेलः बाकी सब ठीक ठाक है' कविता में सुनीता जैन कहती है कि दूसरों के साथ कितना भी घिनौना कार्य पूँजीपति लोग क्यों न करें, इन्हें इस से कुछ भी फर्क नहीं पड़ता। इन के लिए तो हमेशा सब कुछ ठीक-ठाक ही रहता है। भले ही इनकी वजह से किसी की जान ही क्यों न चली जाए, उसका घर-परिवार अनाथ हो जाये, रोटी की लिए दाने-दाने को तरसे। इससे इन्हें कोई मतलब नहीं क्योंकि इनकी रगों में बाजारवाद का खून दौड़ रहा है, अन्यथा ऐसा कभी भी नहीं कहते :

मरा तो बस एक ही/ खुदाई में दीवार गिर पड़ी/ बलिया का था, नया-नया आया/ ज्यादा टोटा नहीं हुआ, ठेकेदार को/ दे-दिवाकर मुँह बंद किया/ बाकी तो ठीक-ठाक है।[13]

ये इतनी धन-दौलत के मालिक हैं कि उससे किसी का भी मुँह बंद करवा देते हैं। बेशुमार पैसे बाँटते हुए इन्हें जरा भी तकलीफ़ नहीं होती क्योंकि ये पैसे भी ऐसी ही हरकतों से कमाये गये हैं। मेहनत की कमाई कोई ऐसे नहीं बहाता। धन-दौलत कमाने के लिए इन्हें कोई भी तरीका अपनाना पड़े चाहे वह अनुचित ही क्यों न हो ? ये डरते नहीं, इन्हें कोई फर्क नहीं पड़ता। पड़ेगा कैसे, जब व्यवस्था में इनकी बिरादरी के लोग मौजूद हैं। धन कमाने की इनकी भूख कभी भी कम नहीं होती बल्कि लगातार बढ़ती जाती है। ऐसे लोगों की मानसिकता से परिचित करवाती ये पंक्तियाँ इसकी उदाहरण हैं, 'बिल्डिंग बढ़िया बन गयी/ पाँच फ्लैट उठ गये तभी/ बनते-बनते एक बचा/ धीरे-धीरे बेचूँगा/ दाम बढ़ाकर/ बाकी तो ठीक-ठाक है।'[14] बाजारवाद के प्रभाव से कोई भी भीतर से तृप्त नहीं हो सकता। लाभ से और इच्छाएँ जागृत होते देख तृष्णाएँ किस तरह बढ़ती है और उसे पूरी करने के लिए वह किस हद तक गिर जाता है, इसे इन पंक्तियों में चित्रित किया है :

नयी लोकेशन देखी है पार्क- 'फेसिंग'/ चार सौ गज़, सिंगल-स्टोरी/ बुढ़िया बैठी है उस में एक अकेली/ बच्चे दोनों अमेरिका, आते नहीं कभी/ पति गया डेंगू से अभी-अभी/ मान गई तो कुछ दे देंगे/ न रास्ते कई और हैं/ कॉलोनी का कर्त्ताधर्त्ता अपनी ही मुट्ठी में है। बाकी सब ठीक ठाक है।[15]

बाजारवाद का ही यह असर है कि असहाय, अकेले बुजुर्ग को भी दे दरिन्दे नहीं बख्शते। अपनी आँखे उनकी जायदाद पर टिकाकर उसे हड़पने के लिए चाहे कुछ भी तरीका इन्हें क्यों न अपनाना पड़े। बाजारवाद के इस भयानक समय में ऐसी सोच का बनना स्वाभाविक है।

व्यक्ति के जीवन को बाजारवाद ने उलट-पुलट कर दिया है। जानी पहचानी वनस्पतियों, जन्तु एवं सूक्ष्म जीव, जो जैव विविधता के अन्तर्गत आते हैं, अब स्मृतियों से विस्मृत होते जा रहे हैं। ज्ञानेन्द्रपति का कवि उन्हें याद कर अपनी कविता में उनके लिए स्थान बनाता है। आज व्यक्ति इतना स्वार्थी हो गया है, बाजारवाद से इतना प्रभावित हो गया है कि वह अत्यधिक पैसा कमाने के लालच में इनकी तस्करी करने में संलिप्त हैं। मेंढक की हालत को देखकर दुःखी होकर 'मेंढक के साथ वर्षा-मंगल' कविता में कवि जल थल को जोड़ने वाले दिन- प्रतिदिन दुर्लभ होते मेंढक को देख कर कहता है कि बड़े दिनों बाद तुम्हारे दर्शन हुए। दुनिया भर के शरीर-क्रिया-विज्ञान को समझने के लिए तो तुम्हें प्रयोग में लाया ही जाता है परन्तु आज तो हालत यह है कि :

टाँगे तुम्हारी/ भायी हैं यूरोप अमरीका की माँस-स्वाद लोलुप जिह्वा को/ उनके दाँतों को खूब-खूब भाया है/ तुम्हारी टाँगों को चिथोड़ना/ उन में छुपा हुआ स्वाद सभ्यरसज्ञों ने पहचाना है/ समझो कि नीची और फीकी हो गयी है/ मुर्गे की कलगी/ हमेशा के लिए।[16]

कवि व्यंग्य भरे शब्दों में कमरे में आये मेंढक को संबोधित कर कहता है कि अगर तुम यहाँ से बाहर उछलोगे तो हो सकता है कि कहीं विदेश पहुँच जाओ और वहाँ खाने की प्लेट में सज जाओ। आगे कवि दुःखी मन से यह कहता है :

हाँ, भाई मेंढक आखिर तुम/ एक गरीब मुल्क के वासी/ बेचे जाते, खरीदे जाते/ यहाँ के खनिजों कंकालों, मेधावी मस्तिष्कों के साथ/ खरीदे जाते उनके द्वारा/ जो खरीदते हैं सब कुछ, सब कुछ, सब कुछ/ सरकारों, शरीरों, आत्माओं को भी/ व्यापारी जो धन्ना सेठ/ समाए दुनिया ऐसा पेट।[17]

भूमि प्रदूषण, जल प्रदूषण के साथ अमानवीय ताकतों के मुनाफाखोर तथा घृणित व्यक्तित्व के कारण आज मेंढक की टर्र-टर्र की आवाज खत्म हो रही है। आज तस्करी का धंधा लगातार फल-फूल रहा है, जिसके कारण जलचर, स्थलचर कोई भी सुरक्षित नहीं दिखाई देता। 'नजातदिन्हा' कविता इसका अपवाद प्रस्तुत नहीं करती जहाँ वन-विभाग के छापे में 1040 कछुए बरामद होने पर वनाधिकारी बताता है कि :

निपोमेरिस कोनोइटस प्रजाति-नामधारी कछुए वे/ पूर्वी उत्तर प्रदेश की नदियों में पाए जाने वाले अमूमन/ संतोष की सांस छोड़ते हुए/ आगे बताया उस भालमन अधिकारी ने/ राजघाट के पास गंगा में/ छोड़ दिये गये वे कछुए। कलकत्ता भेजे जाने के लिए बोरों में बंदकर रखे गये थे जो।[18]

उन्हें कलकत्ता भेजने का तस्करों का एक ही मकसद था कि इन्हें वहाँ से पश्चिमी मुल्क की बंदरगाह भेजा जाना था, जहाँ इन की बेतहाशा माँग है और इन की मुँह माँगी कीमत मिलती है। इन्हें इन जलजीवों से कोई हमदर्दी नहीं है, सिर्फ पैसे से प्यार है इसीलिए इनकी तस्करी की जाती है। आखिर इनकी तस्करी क्यों की जाती है। इन पंक्तियों से इस का उत्तर मिल जायेगा :

क्योंकि इन के माँस से/ बनायी जाती हैं/ यौनोत्तेजना पैदा करने वाली दवाएँ, वियाग्रा सरीखी/ (पश्चिमी च्यवनप्राश कोई-लेकिन हिंसक)/ इसीलिए एक कछुवा वहाँ/ चालीस से सौ डालर में बिकता है/ सख्त कचकड़े के भीतर कोमल माँसवाला कछुआ/ जो दीर्घायु न हो पाये तो भी किसी को दीर्घायु बनाए।[19]

छीजती जा रही प्रजातियों तथा उनके छीजने के कारणों को रेखांकित कर, इसके लिए कवि ने किसी हद तक बाजारवाद को जिम्मेवार ठहराया है। विश्वनाथ प्रसाद तिवारी 'पूरे करो वायदे' कविता में अमानवीय ताकतों के मुनाफाखोर, घृणित तथा छिपे व्यक्तित्व के कारण जंगल में पेड़-पौधों और जीवों की दयनीय हालत देखकर वहाँ के दृश्य को इन पंक्तियों में परिचित करवाते कहते हैं, 'चल रही आरियाँ/ कराह रही पत्तियाँ/ चीख रही घाटियाँ/ भाग रहा हिरनों का झुण्ड/ उतरा रहीं मछलियाँ/

कट रहे देवदारू/ रेत हो रही भवतारिणी।'[20] व्यक्ति अपने मुनाफे के लिए अंधाधुंध पेड़ काट रहा है। पहाड़ियों को तोड़ रहा है। जानवरों का बेरहमी से शिकार कर रहा है। जंगल के जंगल खाली हो रहे हैं। जानवरों की संख्या कम हो रही है। प्रकृति का विनाश हो रहा है।

बाजारवाद का प्रभाव जैव विविधता के साथ देह-व्यापार में भी स्पष्ट दिखाई देता है। जैव विविधता के साथ देह व्यापार धंधे की ओर भी कवि की दृष्टि गई है। 'चुड़का सोरेन' कविता में निर्मला पुतुल इस वास्तविकता से चुड़का सोरेन को अवगत करवाते हुए कहती है :

और हाँ पहचानो/ अपने ही बीच की उस कई-कई ऊँची सैण्डिल वाली/ स्टेला कुजूर को भी/ जो तुम्हारी भोली-भाली बहनों की आँखों में/ सुनहरी ज़िन्दगी का ख्वाब दिखाकर/ दिल्ली की आया बनाने वाली फैक्ट्रियों में/ कर रही कच्चे माल की तरह सप्लाई।[21]

इन सब स्थितियों को गहराई से पहचानते हुए शोषण की शिकार हो रही स्त्री को बचाने के लिए उसे तैयार करती पुतुल कहती है :

बचाओ अपनी बहनों को/ कुँवारी माँ बनी पड़ोस की उस शिलवन्ती के मोहजाल से/ पूरी बस्ती को रिझाती जो/ बैग लटकाए जाती है बाजार/ और देर रात गए लौटती है/ खुद को बेचकर बाजार के हाथों।[22]

'बिटिया मुर्मू के लिए' कविता में बिटिया मुर्मू को माध्यम बनाकर उससे कहती है कि तुम असलियत को पहचानो, अपनी प्रशंसा करने वालों के असली चेहरे को पहचानो। वे सौदागर हैं। ये ही लोग स्त्री और बच्चों के असली शत्रु हैं :

पहाड़ों पर आग वे ही लगाते हैं/ उन्हीं की दुकानों पर तुम्हारे बच्चों का/ बचपन चीत्कारता है/ उन्हीं की गाड़ियों पर/ तुम्हारी लड़कियाँ सब्जबाग देखने/ कलकत्ता और नेपाल के बाजारों में उतरती हैं।[23]

यही नहीं, वे इस बात से भी अनभिज्ञ हैं कि कैसे सौदागर उनका शोषण कर महानगरों में उनकी नुमाइश लगाकर अपना पैसा बना रहे हैं। 'आदिवासी स्त्रियाँ' कविता की ये पंक्तियाँ उदाहरण हैं, 'तस्वीरें कैसे पहुँच जाती हैं उनकी महानगर/ नहीं जानती वे ! नहीं जानती !।'[24]

स्त्री को तरह-तरह के विज्ञापन करते दूसरों को अच्छा अहसास दिलाते-दिलाते खुद के पास कुछ न बच पाने पर चिंतित होकर विश्वनाथ प्रसाद तिवारी 'उसके दुःख' कविता में कहते हैं :

पर्दे पर जब वह तेल का प्रचार करती/ उसके बाल बिना तूफान के लहराते थे/ मसालों के प्रचार में/ महक उठती वह स्वयं/ कैमरा उस की आँखों को/ कभी झील में बदल देता/ कभी अधरों को कोंपलों में/ और हद तब हो जाती जब पैंटी का प्रचार करते/ वह पैंटी से बाहर निकल/ दर्शकों से चिपक जाती।[25]

नारी विज्ञापन और फैशन के नाम पर अपनी देह की अदाओं को बेच रही है। यह सच है कि मजबूरी, गरीबी और हालात किसी से कुछ भी करवा सकती है, चाहे वह उचित हो या अनुचित; परंतु विज्ञापन में बिकने वाली नारी की स्थिति ठीक उल्टी है। उसकी आर्थिक और सामाजिक स्थिति ठीक है। वह यश और नाम की भूखी है। उसे अपने गुणों और अपनी गरिमा के स्थान पर अपनी देह पर अधिक विश्वास है। नारी ने जहाँ एक ओर आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र में स्वतंत्रता की शुरूआत की है, वहीं दूसरी ओर उसने मानसिक और सांस्कृतिक पतन के द्वार खोल दिये हैं। वह आर्थिक स्वतंत्रता के नाम पर मानसिक पतन की ओर अग्रसर है। आज की नारी के मानसिक पतन की शुरूआत मजबूरी या परिस्थिति वश मालूम नहीं होती है। शिक्षित और प्रतिष्ठित नारी ही विज्ञापन, दूरदर्शन और सिनेमा जगत से अपनी गरिमा के पतन की शुरूआत कर रही है। उसकी यह सबसे बड़ी दुर्गति है। वह अंग प्रदर्शन में लगी है। कपड़े उतार रही है। सैक्स का प्रतीक बन रही है। सौंदर्य की नुमाइश कर रही है। यह सिद्ध करने में लगी है कि नारी का नारीत्व नहीं, उसकी देह ही सब कुछ है। इसमें किसी को दोष नहीं दिया जा सकता क्योंकि वह स्वयं ही अपनी देह का उपयोग कर रही है। वह कपड़े उतार कर समूची मानव सभ्यता को नंगेपन और पतन की ओर ले जा रही है। विज्ञापन या अभिनय करने वाली नारी भले ही ऐसे दृश्यों पर गर्व करें, परन्तु यह उसका अदृश्य नंगापन है। यह नारी, नारीत्व, ममत्व, प्रेम, सहृदयता, नारी की विशालता और नारीत्व के गुणों के लिए सबसे बड़ा खतरा है। यह नारी आज की नारी को अतीत के उस काल की ओर ले जा रही है जिस में नारी को केवल सौंदर्य, नुमाईश और भोग की वस्तु समझा जाता था। वह आज यश भोगना चाहती है। वह अंग प्रदर्शन के नाम

पर नंगेपन की ओर अग्रसर है। स्वयं नंगी होने पर राजी है, जो नारी अस्मिता के लिए सबसे बड़ा खतरा बन रही है। विज्ञापन में नैतिक मूल्यों की अनदेखी की जा रही है तथा आज इस बात की आवश्यकता है कि इस बारे में कोई ठोस कदम उठाये जाये। विज्ञापन अनावश्यक इच्छाओं को जगाकर, उपभोक्ता को गुमराह कर, उपभोक्तावाद को बढ़ावा देती है। जहाँ ग्राहक तैयार नहीं होता, वहाँ विज्ञापन के द्वारा आकर्षण पैदा कर बिना जरूरत के भी ग्राहक तैयार किये जाते हैं। स्पष्ट है कि इक्कीसवीं सदी की कविता आज के बाजार की कृत्रिमता और दिखावेपन के स्थान पर सहजता और स्वाभाविकता पर बल देती है। बाजार-वादी समय और उपभोक्तावादी संस्कृति के युग में आर्थिक और मानसिक रूप से पूरी तरह हम गुलामी की ओर बढ़ रहे हैं, अपनी संस्कृति को भूल कर अपनी पहचान खोते जा रहे हैं। विज्ञापन के बाद बात आती है फिल्मों की। फिल्में हमारे मनोरंजन का साधन है। मनोरंजन में शिक्षा, उपदेश, और प्रेरणा का संदेश होना चाहिए। वह हमें कुमार्ग से सन्मार्ग की ओर ले जाए, परंतु आज फिल्में इस उद्देश्य को भूलकर हिंसा और अश्लीलता को फैला रही है। वह मात्र आय का साधन बन चुकी हैं। फिल्में व्यक्ति को पशु बनाने का काम कर रही हैं। मानवीय संबंधों और पारिवारिक संस्कृति को नष्ट कर रही है। मनोरंजन का क्षेत्र भी बाजारवाद से पूरी तरह प्रभावित नज़र आता है। मनोरंजन के क्षेत्र में अपसंस्कृति का सैलाब, उत्तेजक नग्न प्रदर्शन उम्र से पहले जवान हो रहे बच्चों में, कामुक एवं हिंस्र प्रवृत्तियाँ जन्म ले रही हैं। उदय प्रकाश की 'सफल चुप्पी' कविता का कवितांश इस चिंता से साक्षात्कार करवाता हुआ हमें बेचैन कर सोचने-विचारने को विवश करता है :

> सिनेमा हॉल की सबसे अगली कतारों पर बैठे हुए/ वे मनोरंजन उद्योग का 'बॉक्स ऑफिस' तय करते थे/ और जब अस्सी लाख या डेढ़ करोड़ की फीस ले कर नाचती हुई एक/ आइटम गर्ल/ हिलाती थी अपने कूल्हे और छातियाँ/ तो उनकी सीटियाँ बजती थीं अँधेरे में/ कुछ इस हद तक हमसे अलग था उनका दिमाग/ कि वे खलनायक को ही ताली बाजा-बजाकर उकसाते थे/ ठोक दे, साली को ठोक दे।[26]

आज मनोरंजन के साधन बाजार से प्रभावित हैं। मनोरंजन के साधनों का व्यापारीकरण हो चुका है। मनोरंजन का उद्देश्य महज मनोरंजन है चाहे वह अश्लीलता से भरा हुआ ही क्यों न हो कामोत्तेजना, हिंसा आदि से संबंधित अनेक दृश्य दिखाये जाते हैं जिनका जनमानस पर बुरा प्रभाव पड़ता है। ये व्यक्ति का नैतिक स्तर गिराने और उन्हें अपराध की ओर प्रेरित करने में योग देते हैं।

बाजार ने अधिकांशतः व्यक्ति, घर और समाज के भीतर अपनी जगह बना ली है। मानवीय संवेदना के निरंतर छीजते जाने का कारण बाजार ही है। इसके भयानक पंजों के नीचे मानवीय सरोकार, संवेदनाएँ, भावनाएँ और संबंध जो इस संस्कृति की विशेष पहचान थी, वह सिमटती जा रही है। इस समय को सही पहचानते हुए उदय प्रकाश का यह कहना सही है, 'साथियों, यह एक लुटेरा अपराधी समय है/ जो जितना लुटेरा है वह उतना ही चमक रहा है और गूँज रहा है।'[27] इक्कीसवीं सदी की हिन्दी-कविता बाजारवाद के इस खेल को बखूबी समझ चुकी है और इस बात की जरूरत महसूस करती है कि इन सब सिमटती जा रही चीजों को बचाकर सुरक्षित रखे जो धीरे-धीरे लुप्त हो रही है। कवि इस हाल से चिंतित उस की बेहतरी के लिए कविगण से अपील कर यह कहता नज़र आता है, 'कवियों ! पूरे करो अपने वायदे/ शायद कुछ बच जाए/ तुम्हारे शब्दों से।'[28] क्योंकि इन सारी भयावह परिस्थितियों एवं परिणतियों से मानवता को, समाज को, जीवन को यदि कोई बचा सकता है तो वह है साहित्य। क्योंकि इसकी ताकत तीर, तलवार और बम के गोले से भी अधिक आँकी गई है। कवि अपील ही नहीं करता बल्कि वह विश्वस्त भी है तभी तो 'फिर भी कुछ रह जायेगा' कविता में आश्वस्त हो कर यह कहता नज़र आता है :

> मैं तो बस इतना जानता हूँ/ कि कुछ रह जायेगा/ क्या तुम्हें यकीन है/ मर जायेंगी जिजीविषाएँ/ झर जायेंगी आस्थाएँ/ सूख जायेंगे सपने/ व्यर्थ हो जायेंगे शब्द/ क्या तुम्हें यकीन है/ आग सब कुछ जला सकती है/ सब कुछ सुखा सकती है हवा/ पानी सब कुछ गला सकता है/ सब कुछ मिटा सकता है ब्रह्मास्त्र/ नहीं जरूर कुछ रह जायेगा।[29]

कवि भी सकारात्मक जीवन की उम्मीद कर कहता है कि हमारे पास अच्छा साहित्य है, वह हमें इस स्थिति से ऊपर उठायेगा, इस समय से उबारेगा और खुशहाल जीवन लायेगा। इसी उम्मीद के साथ वह यह कहता है, 'कुछ शब्द हैं जो अभी तक जीवन का विश्वास दिलाते हैं/ हम इन्हीं शब्दों से फिर शुरू करेंगे अपनी नयी यात्रा.....।'[30] कवि ने बाजारवाद के कारण आज उत्पन्न हुई विकृतियों को ही चित्रित नहीं किया, वह भविष्य के प्रति आश्वस्त दिखाई देता है, क्योंकि साहित्य ही समाज को शिक्षित बनाता है, उसमें जागरूकता लाता है। व्यक्ति में उचित और अनुचित में अंतर करने का विवेक जगाता है, उसमें जागरूकता

लाता है और समाज में मनुष्यता के अस्तित्व के लिए जरूरी कदम उठाता नज़र आता है। इसका काम व्यक्ति की ठूँठ हो रही संवेदनाओं को झकझोर कर उसमें जागरूकता लाकर उसे एक सही दिशा देना है।

अन्ततः कहा जा सकता है कि बाजारवाद से उपजी मूल्यहीनता को रेखांकित कर, लुप्त होती भाषा, संस्कृति जैव विविधता से चिंतित कवि अकेलेपन को भोगते विवश इनसान को चित्रित कर इस स्थिति से निपटने के लिए पहल करता नज़र आता है। इन कविताओं को बाजारवाद के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुई परिस्थितियों के सूक्ष्म अवलोकन की अभिव्यक्ति कहा जा सकता है।

संदर्भ-संकेत

[1]निर्मला पुतुल- नगाड़े की तरह बजते शब्द, पृ0 26
[2]सुनीता जैन- राग और आग, पृ0 94
[3]कुमार कृष्ण- पहाड़ पर नदियों के घर, पृ0 53
[4]वही, पृ0 10
[5]सुनीता जैन- राग और आग, पृ0 86
[6]निर्मला पुतुल- नगाड़े की तरह बजते शब्द, पृ0 26
[7]वही, पृ0 26
[8]वही, पृ0 27
[9]उदय प्रकाश- एक भाषा हुआ करती है, पृ0 26
[10]सुनीता जैन- राग और आग, पृ0 88
[11]वही, पृ0 88-89
[12]विश्वनाथ प्रसाद तिवारी- फिर भी कुछ बचा रहेगा, पृ0 2
[13]सुनीता जैन- चौखट पर व उठो माधवी, पृ0 28
[14]वही
[15]वही
[16]ज्ञानेंद्रपति- संशयात्मा, पृ0 148
[17]वही, पृ0 149
[18]वही, पृ0 158
[19]वही, पृ0 159
[20]विश्वनाथ प्रसाद तिवारी- फिर भी कुछ बचा रहेगा, पृ0 85
[21]निर्मला पुतुल- नगाड़े की तरह बजते शब्द, पृ0 67
[22]वही, पृ0 68
[23]वही, पृ0 15-16
[24]निर्मला पुतुल- नगाड़े की तरह बजते शब्द, पृ0 11
[25]विश्वनाथ प्रसाद तिवारी- फिर भी कुछ बचा रहेगा, पृ0 95
[26]उदय प्रकाश- एक भाषा हुआ करती है, पृ0 26
[27]वही, पृ0 54
[28]विश्वनाथ प्रसाद तिवारी- फिर भी कुछ बचा रहेगा, पृ0 85
[29]वही, पृ0 86
[30]उदय प्रकाश- एक भाषा हुआ करती है, पृ0 32

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) **9,53-56**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 29 अप्रैल 2015

मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र एक सरल अध्ययन

डॉ. प्रभा दीक्षित*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र एक सरल अध्ययन* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *प्रभा दीक्षित* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

प्रायः जब भी सौन्दर्यशास्त्र पर विमर्श होता है तो उसे कलावादियों के द्वारा ही नहीं यथार्थवादियों के द्वारा भी बेहद जटिल बनाकर पेश किया जाता है। शायद यही कारण है कि साहित्य के सामान्य पाठक ही नहीं साधारण साहित्यकार भी सौन्दर्य बोध के विषय में या तो नहीं जानते या कोई निश्चित ठोस धारणा नहीं बना पाते। यह सही है कि सौन्दर्यबोध को सही ढंग से जानने के लिये सामाजिक विज्ञानों का ज्ञान होना चाहिये। इसके बगैर प्रायः सौन्दर्यबोध का एकांगी ज्ञान प्राप्त होता है किन्तु आधुनिक समय में यदि दर्शन के सार तत्व को सहज व सरल ढंग से व्याख्यायित किया जा सकता है तो सैन्दर्य-शास्त्र की सरल व्याख्या क्यों नहीं की जा सकती जिसे सामान्य पाठक भी आत्मसात कर सकें। प्रस्तुत आलेख इसी उद्देश्य की पूर्ति का एक लघु प्रयास है।

आमतौर पर वर्गों में विभाजित समाज में सौन्दर्य की रूचि भी बटी हुई होती है। हर सौन्दर्य सामाजिक सापेक्षता के आधार पर ही अनुभव किया जा सकता है। यहाँ तक कि जे कृष्णामूर्ति के द्वारा पीपल के पीले पत्ते को टूट कर गिरने के अमूर्त आनंद को भी सामाजिक सापेक्षता की संज्ञा प्रदान की गई है क्योंकि पत्ता, पेड़ और टूट कर गिरने की क्रिया को हम खुली आंखों से देख सकते हैं, किन्तु इस पत्ते के गिरने में किसी बहुजन-हिताय की भावना का उदय नहीं होता। अतः हम इसके मनोगत व्यक्तिगत, अलौकिक आनंद का अनुभव नहीं करते। इस तरह हम इसे अप्रतिम सौंदर्यबोध के रूप में चिह्नित नहीं कर सकते। इसके पूर्व उपर्युक्त विषय-वस्तु को सहज रूप में स्पष्ट किया जाये। चंद मान्यताप्राप्त बुद्ध जीवियों, लेखकों, दार्शनिकों की सौन्दर्य के विषय में दी गई परिभाषाओं का उल्लेख करना समीचीन होगा।

कलाकृति के आधार पर

1 ''जिस किसी वस्तु में सौन्दर्य का गुण है वह सुन्दर है।''(-प्लेटो, आगस्टाइन)

* प्राचार्या, श्री स्वामी नागा जी बालिका डिग्री कॉलेज [भरूआसुमेरपुर] हमीरपुर (उत्तर प्रदेश) भारत। (आजीवन सदस्य)

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

2 ''जिस किसी वस्तु में अलंकार है वह सुन्दर है।'' (-दण्डी, भामह, लांगजाइनस)
3 ''जिस किसी वस्तु में विशिष्ट रूप हो वह सुन्दर है।'' (-वामन, काण्ट, क्लाइनेव)
4 ''जिस वस्तु में प्रकृति का अनुकरण हो वह सुन्दर है।'' (-प्लेटो)

सौंदर्य प्रभाव के आधार पर

1 ''जिस वस्तु के वांदनीय सामाजिक प्रभाव हो वह सुन्दर है।'' (-भरत, मम्मट, टालस्टाय)
2 ''जिस वस्तु से रस या आनंद प्राप्त हो वह सुन्दर है।'' (-अभिनव गुप्त, सातावन)
3 ''जिस वस्तु से विशिष्ट संवेग उत्पन्न हो वह सुन्दर है।'' (-भरत, मम्मट, टालस्टाय)
4 ''जिस वस्तु से तदनानुभूति से अन्तरानुभूति (इंपैथी) हो वह सुन्दर है।'' (-लिप्सली)[1]

सौन्दर्यशास्त्र के परिप्रेक्ष्य में

सौन्दर्य सम्बन्धी अवधारणाओं के अतिरिक्त सौन्दर्यानुभूति के बारे में भी चंद परिभाषायें निम्न लिखित हैं। ये परिभाषायें भी सौन्दर्यानुभूति के बारे में दोहरे मानदण्डों को सथापित करती है- जीवन सापेक्ष एवं जीवनानुभवातीत। ज्ञात हो मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्री भौतिक जगत से इतर किसी सौन्दर्य की कल्पना नहीं करते। वाई0 ए0 रिचर्ड के अनुसार, ''काव्य जगत् का सत्य किसर भी अर्थ में शेष जगत् से भिन्न नहीं होता।'' दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि इसी जगत् की वस्तुओं को लेकर परा-जगत् की कल्पना की जा सकती है। या स्वर्ग का एक कल्पित चित्र बनाया जा सकता है, क्योंकि सामाजिक सापेक्षता से इतर कोई मौलिक कल्पना नहीं की जा सकती। जॉन ड्यूड के अनुसार, ''सौन्दर्यबोध एक प्रकार की पुनर्रचना है। जिसमें चेतना जीवन्त और प्रत्यक्ष हो उठती है। सौन्दर्यबोध एक प्रकार का सहप्रयास है जिसमें बोध के विषय के प्रति सृष्टा के समान ग्राहक का प्रयत्न भी बोध के निमित्त अपेक्षित है। यह एक प्रकार की भाषायवी प्रतिभा है। रचनाकार की कारयित्री प्रतिभा के प्रत्युत्तर में जिसकी वर्तमानता अनिवार्य है। विषयी की सम्पूर्ण सत्ता और विषय के बीच निरन्तर क्रिया प्रतिक्रिया के बिना विषय का सम्यक् बोध नहीं होता और सौंदर्यबोध तो बिल्कुल नहीं।''[2]

विलियम बिनसार ने कलानुभूति जीवनानुभूति और सौन्दर्यानुभूति के संदर्भ में कहा है कि, ''सौन्दर्यानुभूति बहुत कुछ परोक्ष, मिथ, संवादी और द्वन्द्वात्मक आदि सभी रूपों की एक तारतमिक अवस्थिति है।''[3]

टालस्टाय के अनुसार, ''कला एक ऐसी क्रिया है जिसके द्वारा एक व्यक्ति अनुभूति प्राप्त करता है और दूसरे व्यक्ति के हृदय में उस अनुभूति का साधारणीकरण होता है।''

मनोविश्लेषणात्मक सौन्दर्यबोध के प्रवर्तक आई0 ए0 रिचर्ड का कथन है कि, ''आधुनिक सौंदर्यबोध की मान्यता है कि सौन्दर्यबोध के समय मस्तिष्क में एक विशेष, प्रक्रिया होती है।''[4]

यहाँ मनोवैज्ञानिक ढंग से सौन्दर्यबोध को मानवता से प्रतिबद्ध करने का प्रयास किया गया है। इसी तरह प्रसिद्ध मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्री काडवेल के अनुसार, ''सभी वस्तुओं से मनुष्य का सामान्य सम्बन्ध है; इसलिये सौन्दर्य मनुष्य में है। सौन्दर्य सामाजिक परिप्रेक्ष्य में एक वस्तुगम सत्ता है। मार्क्सवादी साहित्य समीक्षा में ''बेस'' अर्थात् नींव एक सुपर स्ट्रक्चर अर्थात् ऊपरी आधार पर साहित्य, कला, नैतिकता, धर्म, संस्कृति आदि पर पर्याप्त विचार हुआ है।

ज्यां पाल सार्त्र ने ''अस्तित्ववाद'' व सौन्दर्यबोध के संदर्भ में वैयक्तिक निर्णय के सम्बन्ध में बल दिया है।[5] सौन्दर्यानुभूति को जीवन की अन्य अनुभूतियों से अलग नहीं किया जा सकता है; क्योंकि यह सत्य के समान विलक्षण है।''[6]

मुक्तिबोध का कथन है, ''सौन्दर्यानुभूति के सम्बन्ध में यह भी विचारणीय होगा कि हर एक कला सिद्धान्त के पीछे एक विशेष जीवन सृष्टि है और उस जीवन दृष्टि के पीछे एक जीवन दर्शन होता है। उस जीवन दर्शन के पीछे आजकल के जमाने में एक राजनैतिक दृष्टि भी लगी रहती है। निःसंदेह नई कविता में एक ''फिलॉसफी'' के रूप में एक कला सिद्धान्त

लाया गया है। कला सिद्धान्त के पीछे सामाजिक साहित्यिक मनोवृत्ति का विश्लेषण करने वाले आधुनिक भावबोध का सिद्धान्त आया और व्यक्ति स्वातंत्र्य के नाम पर एक सामाजिक राजनैतिक दर्शन भी प्रस्तुत हुआ। ये सब नई कविता के समर्थन और विस्तार में आये। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है।''[7]

मुक्तिबोध ने ''नई कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबंध'' पुस्तक में पूंजीपति वर्ग एवं साम्यवादी विचारों के पक्षधरों के मध्य में शीतयुद्ध का जिक्र किया था, तथा उसकी पुष्टि भी ''नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र'' ग्रंथ में हुई है। मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र के प्रवर्तक मार्क्स सौन्दर्यानुभूति को संश्लिष्ट मानते हैं। संश्लिष्टता में सृजनशील विधि, बौद्धिक अवधारणा, ऐतिहासिक प्रवर्ग, उपयोगिता भाव, यथार्थ के पात्र का सम्बन्ध रागात्मक व एन्द्रिक आदि सभी तत्वों का मिश्रण होता है जिससे मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्री रचनाकारों की कृतियाँ निरन्तर परिष्कृत होती हैं। आनेवाली मानवीय सामाजिक चेतना, जनप्रतिबद्धता की समझ, उपयोगिता और सौन्दर्यबोध के अन्तर सम्बन्ध से उत्पन्न हो, कभी संकुचित अर्थ में सर्वहारा और अभिजात्य छद्म और पाखण्ड, शर्मनाक दमन और उत्पीड़न के पिट्ठू, दमघोटू, साहित्य के बीच विभाजन रेखायें खीचती हैं या कभी लड़ाकू कला की सृष्टि करती है जो समाजवादी रूपान्तरण मनुष्य के सर्वश्रेष्ठ क्रान्तिकारी आदर्शों के लिये लड़ती है।''[8]

मार्क्सवादी सौन्दर्यबोध पूंजीवादी या प्रक्रियावादी सौन्दर्यबोध के विरोधी दृष्टिकोण का सौंदर्यबोध है जो वर्गीय आधारों पर द्वंद्वात्मक प्रक्रिया आपसी अन्तर्विरोधों के बीच स्थाति किया जाता है। पूंजीवाद जिस अलौकिक सौन्दर्य को मान्यता प्रदान करता है या ऊपरी सुन्दरता को देखकर उसे सुन्दर घोषित करता है मार्क्सवाद इसके विपरीत क्रिया-कारण सम्बन्धों को खोजकर उसमें छिपे सौंदर्य की तलाश करता है और किसी अमूर्त अलौकिकता पर विश्वास नहीं करता।

पूंजीवादी दर्शन के अनुसार ईश्वर 'सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् व आकारविहीन है। ऐसी हवाई कल्पनाओं को मार्क्सवादी सौंदर्य दृष्टि नकारती है। इस संदर्भ में एक व्यवहारिक उदाहरण प्रस्तुत करना चाहूँगा। मार्क्स के पूर्ववर्ती लेखक वेलेन्सकी ने अपने समकालीन लेखक मित्र गोगोल के उस पत्र का जवाब दिया था जिसमें गोगोल ने लिखा था कि, ''गन्दे थूथन वाले किसान या मजदूर कितने कुरूप होते हैं।'' वेलेंसकी ने पत्र के उत्तर में लिखा था, ''इनके गन्दे रहने का आंशिक कारण हम सफेदपोश लोग भी हैं। ये हमें सुन्दर बनाते हुये स्वयं गन्दे रहते हैं। काश इन्हें भी रहन सहन का उचित अवसर मिलता तो ये हमसे अधिक सुन्दर दृष्टिगत होते।'' गोगोल के प्रतिक्रियावादी सौन्दर्यबोध के वरस्क इसे मार्क्सवादी सौन्दर्यबोध कहा जा सकता है जो उपयोगितावाद की मानवीय कल्पना पर आधारित है। निराला की निम्न दो कविताओं को भी यहाँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत किया जा सकता है, ''बांधो न नाव इस ठांव बंधु/ पूछेगा सारा गांव बंधु।''

इस कविता ममें एक संशयग्रस्त सौन्दर्यबोध दृष्टात होता है। दूसरी कविता 'वह तोड़ती पत्थर' की कुछ पंक्तियाँ देखें, ''वह तोड़ती पत्थर/ देखा उसे मैनें इलाहाबाद के पथ पर/ कोई न छायादार पेड़/ वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार/ श्याम तन भर बंधा यौवन/ नत नयन प्रिय कर्म रत मन/ गुरू हथौड़ा हांथ/ करती बार-बार प्रहार।''

इस कविता में निराला 'श्रम करती हुई स्त्री' के अप्रतिम सौन्दर्य को महत्व देते हैं। वर्तमान समय में भरतनाट्यम् करने वाली एक कलाकार को बहुत कम रूपया प्राप्त होता है, वहीं आइटम गर्ल या सिने तारिका पन्द्रह मिनट अश्लील नृत्य करके करोड़ों रूपये कमा लेती है। ये मूल्य बाजार अपनी विज्ञापनी उपयोगिता के आधार पर निर्धारित करता है। यही है पूंजीवादी सौंदर्यबोध। फिदा हुसैन के चित्र करोड़ों में बिकते हैं। सुनते हैं किसी अरबपति ने भविष्य में अधिक पैसा कमाने के लालच में फिदा हुसैन के अनेक चित्र करोड़ों की लागत में खरीद लिये थे। मेरी दृष्टि में मकबूल फिदा हुसैन से अधिक सवेदनशील चित्र हरिपाल त्यागी के हैं जो वर्गीय संघर्ष को तीव्रता से रेखांकित करते हैं, किन्तु त्यागी जी के साथ बाजार का क्रेज नहीं है। ध्यातब्य है कि माडर्न आर्ट के....विश्व प्रसिद्ध चित्रकार पिकासो ने अपने अन्तिम समय में कहा था कि, ''वो माडर्न आर्ट के द्वारा लगभग 40वर्षों तक लोगों को मूर्ख बनाते रहे।''

अन्त में

मार्क्स, एंगिल्स ने अलग से सौन्दर्यशास्त्र पर कोई पुस्तक नहीं लिखी है। हाँ! कला एवं सौन्दर्यबोध के बारे में उनकी समीक्षात्मक टिप्पणियाँ पाई जाती हैं। इन्हीं टिप्पणियों को आधार बनाकर लेनिन, ट्राटस्की, गोर्की, माओ, कॉडवेल, डॉ0

रामविलास शर्मा, मुक्तिबोध, नामवर आदि सैकड़ों मार्क्सवादी लेखकों ने मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र की रचना की है और सभी ने सौंदर्यबोध के विविध आयामों को चिह्नित किया है। मार्क्सवादी सौंदर्यबोध पूंजीवादी साम्राज्यवादी सौंदर्यबोध का विरोधी भले हो परन्तु दोनों के बीच कोई लौह दीवार खड़ी नहीं की जा सकती। यह सत्य है कि सौन्दर्यबोध का सटीक मूल्यांकन समाजवादी स्थापना के बाद ही होगा, परन्तु जहाँ जीवन है, जीवन का यथार्थ है, वैज्ञानिक चेतना है, वह सौन्दर्यबोध समाजवादी व्यवस्था की स्थापना के बाद भी मूल्यवान होगा। आज हम आनंद में नहीं बल्कि त्रासदी में जी रहे हैं। कल हमें सहज आनंद की तलाश होगी। चूँकि विपरीत तत्वों की एकता बनी रहेगी और यह द्वंद्ववादी सिद्धान्त सौन्दर्यशास्त्र पर भी लागू होता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

[1]रोहिताश्व- समकालीन कविता; मार्क्सवाद सौंदर्यशास्त्र के परिप्रेक्ष्य में, पृष्ठ संख्या 24
[2]जानड्यई- आर्ट एण्ड एक्सपीरियन्स, पृष्ठ संख्या 53
[3]विलियम के बिमसार लिट्रेरी क्रिटिसिज़्म ए शार्ट हिस्ट्री, पृष्ठ संख्या 740-41
[4]आई0ए0 रिचर्ड- प्रिंसिपल ऑफ लिट्रेरी क्रिटिसिज़्म, दूसरा अध्याय, कलैक्टेड वर्क्स, पृष्ठ संख्या 9
[5]ज्यॉ पाल सार्त्र- ह्वाट इज लिट्रेचर, पृष्ठ संख्या 9-13
[6]वही, पृष्ठ संख्या 9
[7]मुक्तिबोध- मुक्तिबोध रचनावली, भाग-5, पृष्ठ संख्या 5-32
[8]रोहिताश्व- वही, पृष्ठ संख्या 61

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) **9,57-60**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 25 जून 2015

काव्य में श्लेष अलंकार का महत्व

डॉ. मंजु वर्मा*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *काव्य में श्लेष अलंकार का महत्व* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *मंजु वर्मा* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

कहानी और उपन्यास के इस दौर में भारतीय काव्यशास्त्र की उपेक्षा होने लगी है। भारतीय काव्यशास्त्र को समझने के लिए संस्कृत के ज्ञान की आवश्यकता स्वाभाविक है। वर्तमान समय में कहानी और उपन्यास के अध्येता संस्कृत ज्ञान से बचना चाहते हैं। यही कारण है कि काव्यशास्त्र जटिल लगने लगता है। इस दुरूहता को दूर करने लिए हमें पुनः काव्यशास्त्र को नये रूप से समझने, उसे रोचक तथा सरस बनाने की आवश्यकता है। उसके विभिन्न सिद्धान्तों का मूल्यांकन एवं महत्व को उद्घाटित करने की भी आवश्यकता है। सरलता और 'शार्टकट' के युग में काव्यशास्त्र को पढ़ने और समझने में जो परिश्रम करना पड़ता है उसके लिए हम सरलता से तैयार नही होते हैं। कहॉ कहानी और उपन्यास की सरलता और कहॉ काव्य का सबसे कठिन श्लेष काव्य रूप। दोनों में संगति नहीं बैठती है, लेकिन हम यह भूल जाते हैं कि रस, छन्द और अलंकारों का प्रयोग करके ही विद्वान आचार्यों ने हिन्दी साहित्य समृद्ध और विस्तृत बनाया है।

वाङ्मय के शास्त्र और काव्य दो महत्वपूर्ण अंग हैं। काव्य ज्ञान के लिए शास्त्र का ज्ञान आवश्यक है। जिस प्रकार बिना दीपक के पदार्थों का प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार शास्त्र-ज्ञान के बिना काव्य ज्ञान असम्भव प्रतीत होता है। भारतीय काव्यशास्त्र विशिष्ट होने के साथ-साथ दुर्बोध और जटिल भी है। वर्तमान समय में भारतीय काव्यशास्त्र में नवनवोन्मेशिनी प्रतिभा का पलायन दिखाई दे रहा है। काव्यशास्त्र सम्बन्धी समृद्ध परम्परा का ह्रास होता जा रहा है। अपनी जटिलता एवं दुरूहता के कारण भी काव्यशास्त्र दुर्बोध बनता जा रहा है।

साहित्य की आलोचना का आरम्भ साहित्य के उदय के साथ ही हो जाता है। आज के बौद्धिक युग में काव्य की आलोचना नितान्त आवश्यक है। काव्य आज के जीवन का अभिन्न अंग है। काव्य विभिन्न जीवन-मूल्यों का भी संकेत करता है। जीवन के लिए काव्य में प्रेरणा है या नहीं, काव्य लोकमंगल है या नहीं, इसके परीक्षण के लिए काव्य-शास्त्र का उदय होता है।

मानव समाज सौंदर्योपासक है, उसकी इस प्रवृत्ति ने ही अलंकारों को जन्म दिया है। शरीर की सुन्दरता बढ़ाने के लिए जिस प्रकार मनुष्य ने भिन्न-भिन्न प्रकार के आभूषणों का प्रयोग किया, उसी प्रकार अपनी भाषा को सुन्दर बनाने के लिए

* वरिष्ठ प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, एस. आर. डी. ए. के. पी. जी. कॉलेज हाथरस (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

अलंकारों की योजना की। अपनी बात को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए चमत्कार अथवा रमणीयता का आश्रय लेना पड़ता है, उसी प्रकार काव्य को सुन्दर एवं प्रभावपूर्ण बनाने के लिए चमत्कार अथवा रमणीयता आ आश्रय लेना पड़ता है। अलंकार वाणी के विभूषण कहे जाते हैं। अलंकारो के द्वारा अभिव्यक्ति में स्पष्टता, भावों में प्रभविष्णुता और प्रेषणीयता तथा भाषा में सौंदर्य का सम्पादन होता है। वाणी को अलंकृत तथा चमत्कृत करना ही अलंकारों का ध्येय है। काव्य में अलंकारों का वही स्थान है जो शरीर के लिए आभूषणों का होता है। आभूषण शरीर की शोभावृद्धि करते हैं और साथ ही साथ आत्मा को भी प्रफुल्लित करते हैं वैसे ही अलंकार काव्य के शरीर शब्द और अर्थ को अलंकृत करते हैं।

काव्य शोभा के विधायक रूपों में श्लेष अलंकार और श्लेष काव्य का अपना महत्व है। हिन्दी के अधिकांश आचार्यों ने इस विषय में संस्कृत के आचार्यों का पूर्णतः अनुकरण किया है।

श्लेष शब्द की अर्थमीमांसा

श्लिष् धातु में 'घ' प्रत्यय लगने पर 'श्लेष' शब्द की निष्पत्ति होती है। श्लिष् धातु की गणना तीन गणों में उपलब्ध होती है- प्रथम भ्वादिगण परस्मैपद में, द्वितीय दिवादिगण परस्मैपद में, तृतीय चुरादिगण उभयपद में। प्रथम में इसका अर्थ जलना, द्वितीय में इसका प्रयोग जमे या चिपके रहना, सम्मिलित या संयुक्त होना स्वीकारा गया है, तृतीय में इसका अर्थ जोड़ना, मिलाना आदि माना गया है।[1] वामनशिवराम आप्टे ने इसका अर्थ निम्न प्रकार माना है- मिलाप, संगम, अनेकार्थक शब्द प्रयोग।[2] द्वारिका प्रसाद शर्मा ने भी इन्हीं अर्थों का उल्लेख किया है।[3] संस्कृत के सर्वाधिक प्रतिष्ठित एवं विशालतम कोष 'वाचस्पत्यम्' का मत भी इन्हीं के आस-पास है। संस्कृत कोषकारों के मतों का सूक्ष्म अध्ययन किया जाये तो निम्न तथ्य प्राप्त होते हैं- 1. 'श्लेष शब्द की निष्पत्ति श्लिष् धातु में 'घ' प्रत्यय लगाने से सम्पन्न हुई है। 2. श्लिष् धातु का मूल अर्थ जलना, चिपकना, जमना, संयुक्त या सम्मिलित होना है। अतएव श्लेष शब्द का व्युत्पत्तिपरक अर्थ है- संधि, चिपकना आदि। 3. श्लेष शब्द के व्युत्पत्तिपरक अर्थ में मिलन का भाव होने के कारण ही अलंकार विशेष के अर्थ में इसलिए प्रचलित हुआ है कि वहाँ भी दो या अधिक अर्थ परस्पर मिले या चिपके रहते हैं। 4. श्लेष शब्द पुल्लिंग और एक वचन है।

संस्कृत काव्य शास्त्र में श्लेष शब्द का प्रयोग गुणविवेचन और अलंकार विवेचन दो संदर्भों में उपलब्ध होता है। संस्कृत काव्य-शास्त्र में गुणविवेचन के संदर्भ में श्लेष शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग भरत मुनि ने किया है। उन्होंने दस गुणों का विवेचन किया है जो इस प्रकार हैं- श्लेष, प्रसाद, समता, समाधि, माधुर्य, ओज, सौकुमार्य, अर्थाभिव्यक्ति उदारता और कान्ति।[4] भरतमुनि के अनुसार अनेक शब्दों, अर्थों या वर्णों का एक में संगठन श्लेष कहलाता है, 'ईप्सितेनार्थजातेन सम्बद्धानुपरस्परम्। श्लिष्टता या पदानां हि श्लेष इत्यभिधीयते।।'[5]

दण्डी और वामन ने भी गुणों के अन्तर्गत श्लेष का विवेचन किया है, लेकिन उनकी शब्दावली भरतमुनि से कुछ भिन्न है। दण्डी के अनुसार अल्पप्राण वर्णों की प्रचुरता से युक्त तथा शैथिल्य शून्य रचना श्लेष गुण से युक्त होती है। *श्लिष्टमस्पृष्ट-शैथिल्यमल्पप्राणाक्षरोत्तरम्।*[6]

वामन ने सभी गुणों के शब्द और अर्थ के आधार पर दो-दो भेद किये हैं। वामन शब्द श्लेष में मसृणता (कोमलता) को प्रमुख मानते हैं, 'मसृणत्वं श्लेषः।'[7] तथा अर्थ श्लेष में घटना की विशेषता को 'घटना-लेष।'[8] इस प्रकार इन आचार्यों के मतानुसार जिसमें अनेक पद एक पद के समान प्रतीत होते हैं ऐसी रचना विशेषतः श्लेष कहलाती है।

श्लेष सर्वस्वीकृत अलंकार है। हिन्दी काव्यशास्त्र में सभी आलंकारिकों ने श्लेष का विवेचन किया है। श्लेष का अलंकार के रूप में प्रथम विवेचन का श्रेय आचार्य भामह को है। उन्होंने इसे श्लेष न कहकर श्लिष्ट कहा है। उनका मत है कि गुण, क्रिया और नाम के कारण उपमेय का उपमान के साथ तादात्म्य या अभेद स्थापन ही श्लेष है, 'उपमानेन यत्तत्वमुपमेयस्य साध्यते। गुणक्रियाभ्यां नाम्ना च श्लिष्टं तद्भिधीयते।।'[9]

श्लेष को मान्य स्वरूप देने का श्रेय आचार्य दण्डी को प्राप्त है। उनके अनुसार समान शब्द रूप से युक्त वाक्यार्थ जब अनेकार्थ का प्रतिपादन करे तब श्लेष अलंकार होता है। दण्डी की परिभाषा ही आज तक मान्य है।

श्लेष के स्वरूप, प्रकार और क्षेत्र निर्धारण में सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान उद्भट का है। उद्भट ने इसके दो भेद प्रस्तुत किये- शब्द श्लेष और अर्थ श्लेष। उनके अनुसार उन शब्द के बन्ध को श्लेश कहते हैं जो भिन्नार्थक होते हुए भी एक ढंग से उच्चरित होते हैं।

पंडितराज जगन्नाथ ने अनेक अर्थों का कथन या प्रतिपादन को श्लेष अलंकार माना है। श्लेष की शब्दालंकारता और अर्थालंकार पर भी उन्होंने गम्भीरतापूर्वक विचार किया है और इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि श्लेष शब्दालंकार भी है और अर्थालंकार भी।

हिन्दी में रीतिकालीन आचार्य केशवदास ने श्लेष का निरूपण इस प्रकार किया है- 1. दोउ तीन अरु भाँति बहु, आवत जामें अर्थ/ स्लेश नाम तासों कहत, जे हैं बुद्धि समर्थ।। केशवदासः कविप्रिया; 2. एक वचन में होत जहाँ, बहु अरथन को ज्ञान। स्लेष कहत हैं ताहि सो, भूषन सुकवि सुजान।। भूषणः शिवराजभूषण छन्द

प्रायः एक शब्द से अनेक अर्थ निकलने को ही श्लेष अलंकार नाम दिया गया है। श्लेष की विभिन्न परिभाषाओं से यही निष्कर्ष निकलता है कि अनेकार्थी शब्दों के द्वारा कई अर्थों का कथन करना ही श्लेष अलंकार है।

शब्द श्लेष

जब श्लेष अलंकार में पद्परिवर्तन सहने की क्षमता न हो, अर्थात अनेकार्थी पद के स्थान पर उसका अन्य पर्याय रख देने से श्लेष अलंकार का अस्तित्व ही समाप्त हो जाए तो उसे शब्द श्लेष कहते हैं। यह श्लेष अनेकार्थी शब्दों से ही उत्पन्न होता है, यही कारण है कि यह अन्य पर्याय से नहीं बन पाता क्योंकि दूसरा पर्यायवाची शब्द पूरी तरह उन दोनों अर्थों को व्यक्त नहीं कर पाता है। उदाहरणार्थ, 'जहाँ वारुणी की करी, रंचक रुचि द्विजराज। तही कियो भगवंत बिन, संपति सोभा साज।।'[10] केशवदास के इस दोहे में श्लेष अलंकार है। 'द्विज' शब्द अनेकार्थी है। इसका एक अर्थ है- चन्द्रमा और दूसरा ब्राह्मण। इस शब्द के दो के अतिरिक्त भी दाँत, पक्षी आदि अनेक अर्थ हैं। यहाँ पहले दो अर्थ लेने पर दोहे के दो अर्थ इस प्रकार निकलते हैं- प्रथम, जैसे ही कोई ब्राह्मण शराब (वारुणी) की तनिक सी भी इच्छा करने लगता है, वैसे ही भगवान उसे ब्राह्म-णोचित गरिमा और वैभव से शून्य बना देता है।

द्वितीय अर्थ- जैसे ही चन्द्रमा पश्चिम (वरुण की) दिशा की ओर तनिक भी जाने लगता है, वैसे ही सूर्य उसे कलाओं से शून्य बना देता है। पूर्णिमा को चन्द्रमा पूर्व दिशा में उदित होता है और धीरे-धीरे पश्चिम दिशा की ओर बढ़ने लगता है तथा कलाओं से शून्य होने लगता है। अमावस्या को वह शून्य होकर पश्चिम दिशा में पहुँच जाता है। यहाँ दोनो अर्थ 'द्विजराज' शब्द पर निर्भर हैं और उन्हीं के अनुकूल वारुणी (1-शराब, 2-पश्चिम दिशा) तथा भगवंत(1-भगवान, 2-सूर्य) शब्द भी अनेकार्थी न होकर दो-दो अर्थों को व्यक्त करते हैं। यदि यहाँ 'द्विजराज' के स्थान पर अन्य पर्याय विप्र, भूदेव आदि रख दिये जाए तो दोनों अर्थ व्यक्त नहीं होंगे। चूंकि श्लेष शब्द विशेष पर आधारित है और उसके स्थान पर उसका अन्य पर्याय रख देने पर उसका अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है, अर्थात उसमें पदपरिवृत्ति सहने की क्षमता का अभाव है, इसलिए इसे शब्द श्लेष कहा जाता है। शब्द श्लेष के भी दो भेद माने गए हैं- 1. अभंग श्लेष, 2. सभंग श्लेष।

अर्थ श्लेष

जब श्लेष में पदपरिवर्तन सहने की क्षमता हो, अर्थात जब श्लेष शब्द विशेष पर आश्रित न हो और उस शब्द के स्थान पर उसका अन्य पर्याय रख देने पर भी श्लेष का अस्तित्व बना रहे, वहाँ अर्थ श्लेष होता है। जैसे- 'नर की अरु नल-नीर की, गति एकै करि जोइ। जे तो नीचो ह्वै चले, तेतो उँचो होई।।'[11] बिहारीः सतसई।

कवि का कथन है कि मनुष्य और नल के पानी की व्यवस्था एक सी समझो। जिस प्रकार नल का पानी जितना नीचा होगा उतना ही ऊँचा होगा, उसी प्रकार मनुष्य जितना विनम्र होगा, उतना ही श्रेष्ठ माना जाएगा। दोहे में प्रयुक्त 'नीचो' (1- निम्न 2- विनम्र) तथा ऊँचों(1- उच्च, 2- श्रेष्ठ) सामान्यतः अनेकार्थी नहीं हैं लेकिन कवि ने इनसे नर और नल नीर दोनों की व्यंजना करायी है। अतएव यहाँ अर्थ श्लेष अलकांर है।

इस प्रकार श्लेष एक प्रसिद्ध अलंकार है। अलंकार से भी आगे बढ़कर यह श्लेष-काव्य के रूप में भी लोकप्रिय रहा है। संस्कृत साहित्य में इन श्लेष-काव्यों को द्विअर्थी काव्य अथवा द्विसंधान काव्य कहा गया है।

श्लेष विभिन्न अलंकारों का भी मूल है जैसे- 1-श्लेष और श्लेषवक्रोक्ति, 2-श्लेष और विरोधाभास, 3-श्लेष और परिसंख्या, 4- श्लेष और समासोक्ति आदि। इस प्रकार भारतीय काव्य शास्त्र में श्लेष अलंकार प्रारम्भ से ही विवेचन का विषय रहा है। दो या अधिक अर्थों की अभिव्यक्ति होने के कारण श्लेष अलंकार विशेष लोकप्रिय भी है।

संदर्भ ग्रन्थ

[1]वामन शिवराम आप्टे- संस्कृत-हिन्दी कोष, पृष्ठ संख्या 1040
[2]वही, पृष्ठ संख्या 1040
[3]द्वारिका प्रसाद शर्मा- संस्कृत-शब्दार्थ-कौस्तुभ
[4]भरतमुनि- नाट्यशास्त्र
[5]वही, 16/98
[6]दण्डी- काव्यादर्श, 1/43
[7]वामन- काव्यालंकार सूत्रवृत्ति
[8]वही
[9]भामह- काव्यालंकार, 3/14
[10]केशवदास
[11]बिहारी : सतसई

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) 9,61-63
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 18 अप्रैल 2015

पूर्व मध्य काल में सूती वस्त्र उद्योग

डॉ. सुम्बुला फिरदौस*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *पूर्व मध्य काल में सूती वस्त्र उद्योग* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *सुम्बुला फिरदौस* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

पूर्व मध्यकाल में सूती वस्त्र का विशाल उद्योग था, इस काल में सूती वस्त्र उद्योग का विस्तार हुआ, *आपस्तम्ब ग्रह्यसूत्र* में सूती वस्त्र का वर्णन मिलता है। *अभिधानचिन्तामणि* से ज्ञात होता है कि वस्त्र के निर्माण के लिये चार प्रकार की सामग्रियों का प्रयोग होता था, उनमें क्षोभ, कपास, कौशेय, रोमज प्रमुख थे।[1] *अभिधानचिन्तामणि* में बुनकर के दो नाम हैं, तंत्रवाय एवं कुविन्द; कपड़े की बुनाई के दो नाम हैं, वाणि व व्यूति।[2] बुनकर को साधारणतया तंतुवाय कहा जाता था पुरूष वस्त्र बुनते थे एवं स्त्रियाँ सूत कातती थीं। यद्यपि वस्त्र की बुनाई में पर्याप्त सुधार नहीं हुआ था तथापि सूत कातने की विधि में सुधार हुआ। बहुसंख्य बुनकर सूत कातने में लगे हुये थे।[3] वस्त्र को रंगने के लिये नील की खेती की जाती थी वस्त्र की छपाई भी की जाती थी।[4]

मेधातिथि के अनुसार जिन स्त्रियों के पति ने भरण पोषण के लिये धन ना छोड़ा हो वे कताई बुनाई के द्वारा जीवन यापन कर सकती हैं विधवा स्त्रियाँ भी इस व्यवसाय को अपना सकती है।[5] *मेधातिथि* ने सूती वस्त्र उद्योग का उल्लेख किया है।[6] बुनकर, दर्जी, रंगरेज इस व्यवसाय में लगे हुये थे। स्त्रियाँ भी धागा और जाली बुनती थीं। बुनकरों की संख्या में सूती वस्त्र केउद्योग के विकास के साथ वृद्धि हुई।

सूती वस्त्र विभिन्न प्रकार से बनाये जाते थे। *ह्वेनसांग* के अनुसार रूई से वस्त्र बनता था। मथुरा से धारीदार किस्म का सूती वस्त्र बनता था।[7] *चाउजुकुआ* के अनुसार गुजरात में छीट बनाई जाती थी, मालाबार में छीट एवं सूती कपड़ा बनता था।[8] चोलमण्डल में सूत और सिल्क क मिश्रण से वस्त्र निर्माण का उद्योग विकसित था एवं समाज का महत्वपूर्ण आर्थिक आधार था।[9] कपास, सन, बांस आदि पौधों के रेशों से सूती वस्त्र निर्मित किये जाते थे। *मानसोल्लास* में राजा के द्वारा प्रयोग किये जाने वाले वस्त्रों का वर्णन है। सूती वस्त्र जन-सामान्य के अतिरिक्त मंहगे किस्म के भी बनाये जाते

* पूर्व-शोध छात्रा, प्राचीन भारतीय इतिहास विभाग, राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

थे। मंहगे वस्त्र उत्तम किस्म के सूत से बनाये जाते थे।[10] गुजरात एवं बंगाल के नगरों में सफेद सूती कपड़े का निर्माण होता था। काम्बे के सूती वस्त्र प्रचुर उपलब्धता एवं सस्तेपन के कारण विख्यात था।[11]

इब्नसईद के अनुसार दक्षिण भारत में कोरोमण्डल में कपड़ों की रंगाई एवं छपाई का काम होता था, दक्षिण भारत में महीन एवं छपे हुये सूती वस्त्र का उपयोग समृद्धि का प्रतीक माना जाता था।[12] निर्धन वर्ग जिस सूती वस्त्र का प्रयोग करते थे उसे पट कहते थे उत्तम प्रकार का सूती वस्त्र योद्धा प्रयोग करते थे जिसका मूल्य अन्य वस्त्रों के मूल्य से अधिक था।[13] सलाबटी एवं देवगीरी उत्तर प्रकार के सूती वस्त्र थे जो प्रायः धनी वर्ग प्रयोग करते थे।[14]

सूतीवस्त्र उद्योग में अनेक तकनीकों का प्रयोग होने के कारण विकास हुआ चरखे के प्रयोग के साथ सूती वस्त्र उद्योग का विकास हुआ चरखे का प्रयोग मुस्लिम आक्रमणकारियों के आगमन के साथ आरम्भ हुआ, चरखे के सरल प्रयोग से सूत कातने की योग्यता में वृद्धि हुई।[15] *इसामी* के अनुसार चरखे का प्रयोग विशेष रूप से स्त्रियाँ करती थीं। पिंजन नामक उपकरण के प्रयोग से भी सूतीवस्त्र उद्योग का विकास हुआ। गुजरात एवं काठियावाढ़ा में उत्तम कोटि का कपास उत्पादन होता था। इस कारण सूती वस्त्र उद्योग इन क्षेत्रों में विकसित था। जैन पुराणों में सूतीवस्त्र के लिये कापसिक शब्द का प्रयोग हुआ है।[16] कपास, सन, बांस, अलसी पौधों के रेशों से सूतीवस्त्र निर्मित किये जाते थे। *मानसोल्लास* से ज्ञात होता है कि सूत को साफ किया जाता था धागा लपेटने की सूत कातने की तैयारी की जाती थी सूती धागे विभिन्न प्रकार के बनाये जाते थे, सूत कातने एवं बुनने के पृथक उद्योग विकसित थे।[17] सूत का व्यापार करने वालों को सौन्त्यि (सौत्रिक) कपास का व्यापार करने वालों को कप्पासिय (कार्पासिक) कहते थे।[18] *सुलेमान* अरब यात्री ने 9 शताब्दी में भारत की यात्रा का वर्णन किया है कि सूती वस्त्र इतना अधिक महीन बनाया जाता था कि अंगूठी से निकल जाता था। *मार्को पोलो* के अनुसार बंगाल एवं भारत के अन्य भागों ने सूती वस्त्र उद्योग विकसित था।[19] वस्त्रनिर्माण के लिये कारखाने होते थे जहाँ जुलाहे कपड़ा बुनते थे एवं सूती वस्त्र तैयार किया जाता था।[20] बंगाल कांचीपुरम् वस्त्रउद्योग के लिये प्रसिद्ध था यहाँ के जुलाहे चार पट्टशालिनों में रहते थे।[21]

पूर्व मध्यकाल में सूतीवस्त्र उद्योग क्षेत्रों में विकसित था। *ह्वेनसांग* ने लिखा है कि कासरूप में उत्तम प्रकार का वस्त्र बनता था। *चाउजुकुआ* के अनुसार चोल राज्य में सूती वस्त्र बनता था। *मार्कोपोलो* के अनुसार वारंगल में सूतीवस्त्र उद्योग विकसित था[22] *मार्को पोलो एवं चीउकोऊतोऊ* ने मालाबार में चलने वाले सूतीवस्त्र उद्योग का उल्लेख किया है। *मानसोल्लास* से ज्ञात होता है कि चोलमण्डल, कलिंग, अन्हिलवाड़ नागपट्टम तथा मुल्तान आदि प्रदेशों में वस्त्रोत्पादन व्यवसाय विकसित था।[23] *युवानचवांग* के अनुसार मथुरा में उत्तम कोटि का वस्त्रोत्पादन होता था, जिससे प्रतीत होता है कि मथुरा में कपास का उत्पादन किया जाता था।[24]

सूतीवस्त्र का अन्य देशों से व्यापार किया जाता था। *इब्नखुर्दादब* ने उल्लेख किया है कि सूतीवस्त्र का अरब को निर्यात किया जाता था। *चाउजुकुआ* के अनुसार सूतीवस्त्र का अन्य देशों को निर्यात् किया जाता था।[24] आयात किये गये वस्त्रों की चुंगी अधिक थी इसका कारण आयात में कमी करना था, क्योंकि वस्त्र व्यवसाय विकसित अवस्था में था।[25] अरब यात्री *इब्ने सईद* के अनुसार सूती वस्त्र का समुद्री मार्ग सेपश्चिम तथा पूर्वी प्रदेशों में निर्यात किया जाता था। दक्षिण भारत में सूती कपड़ा पूर्व में चीन एवं पश्चिम में फारस में लाकर एकत्र किया जाता था और इन देशों से एशिया अफ्रीका का यूरोप के दूसरे देशों को निर्यात किया जाता था।[26]

इस प्रकार निष्कर्षतः सूती वस्त्र उद्योग देश में विकसित अवस्था में था। विभिन्न सूतीवस्त्र के प्रसिद्ध केन्द्र थे। जहाँ से अन्य क्षेत्रों में वस्त्र जनोपयोग के लिये बाजार में लाये जाते थे। उक्त काल में नई तकनीकों का विकास होने से वस्त्र उद्योग का विस्तार हुआ बनुकरों की संख्या में वृद्धि हुई। सूतीवस्त्र का अन्य देशों में निर्यात् किया जाता था कपास उत्पादन अधीत काल में प्रचूर मात्रा में था विभिन्न पृथक किस्म के सूती वस्त्र जन-सामान्य की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर बनाये जाते थे एवं उपयोग किये जाते थे।

स्रोत

[1]अभिधानचिन्तामणि, भाग-2
[2]वही, पृष्ठ संख्या 227
[3]इकोनोमिक हिस्ट्री ऑफ इण्डिया -इरफान हबीब, भाग-1, पृष्ठ संख्या 79
[4]ट्रेवेल्स मार्को पोलो, पृष्ठ संख्या 332-4
[5]मेघातिथि टीका, पृष्ठ संख्या 9-75
[6]विमल चंद्र पाण्डेय, पृष्ठ संख्या 24
[7]हर्षचरित, अध्याय-1
[8]चाउजुकुआ, पृष्ठ संख्या 88
[9]दक्षिण भारत का इतिहास -एच0एन0 दूबे, पृष्ठ संख्या 260
[10]लाइफ इन एश्येण्ट इण्डिया ईज़ डेपिक्टेड इन कैनोनिकल लिटरेचर -जगदीश चंद्र जैन, पृष्ठ संख्या 45
[11]भारत का इतिहास -रोमिला थापर, पृष्ठ संख्या 267
[12]दक्षिण भारत का इतिहास -एच0एन0 दूबे, पृष्ठ संख्या 260
[13]बरनी, पृष्ठ संख्या 310
[14]वही, पृष्ठ संख्या 311
[15]फोर्ब्स, पृष्ठ संख्या IV, 302
[16]जैन पुराणों का सांस्कृतिक अध्ययन -देवी प्रसाद मिश्र
[17]सोशल एण्ड रूरल एकोनोमी ऑफ नादर्न इण्डिया -ए0एन0 बोस, पृष्ठ संख्या 244
[18]चाउफानची, पृष्ठ संख्या 93
[19]एग्री हिस्ट्री ऑफ कॉटन इन इण्डिया -वी0 शांतानाम की सुन्दरम्
[20]आशीर्वादी लाल, पृष्ठ संख्या 316-317
[21]मध्यकालीन भारत -एच0सी0 वर्मा, पृष्ठ संख्या 84
[22]मार्कोपोलो, पृष्ठ संख्या 2-36
[23]दक्षिण भारत का इतिहास -हरि नारायण दूबे, पृष्ठ संख्या 260
[24]चाउफानची, पृष्ठ संख्या 93
[25]भारत का इतिहास -रोमिला थापर, पृष्ठ संख्या 300
[26]मध्यकालीन भारत -एच0सी0 वर्मा, पृष्ठ संख्या 87

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) 9,64-66
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 27 जून 2015

प्राचीन भारत में स्त्रियों का सम्पत्ति पर अधिकार

जिज्ञासा*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *प्राचीन भारत में स्त्रियों का सम्पत्ति पर अधिकार* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *जिज्ञासा* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

समाज का मुख्य घटक परिवार होता है और परिवार स्त्री और पुरूष के साथ सन्तानों से बनता है। परिवार की अवधारणा मध्य पाषाण काल की उन समाधियों से साकार होती हुई दिखायी पड़ती है, जो मध्य गंगा घाटी के सरायनाहर राय, दमदमा और महदहा से युग्म समाधियों के रूप में प्रकाश में आयी है, जिनमें स्त्री और पुरूष को एक साथ दफनाया गया है।[1] किन्तु पुरातात्त्विक साक्ष्यों के आधार पर स्त्रियों के अधिकार और कर्त्तव्य पर प्रकाश डालना दुष्कर कार्य है। सर्वप्रथम ऋग्वैदिक काल में स्त्रियों के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक अधिकारों को रेखांकित किया गया है। ऋग्वैदिक काल में स्त्रियों को अधिक सम्मान और अधिकार प्राप्त थे। स्त्रियों *विदथ* नामक समिति में सदस्य होने और अपने विचार रखने का अधिकार था। उन्हें पुरूषों के साथ यज्ञ करने और वैदिक मंत्रों का पाठ करने का अधिकार था। ऋग्वेद में कन्याओं को भी शिक्षा-दीक्षा का अधिकार दिया गया था।[2] इस काल में घरेलू व्यवसायिक कार्यों में स्त्रियों को महत्वपूर्ण भूमिका थी। उत्तर वैदिक काल के प्रारम्भिक शताब्दियों में स्त्रियों की दशा अच्छी थी। अथर्ववेद में स्त्रियों को सभा में जाने, यज्ञ में भाग लेने, यज्ञ वेदी का निर्माण करने का उल्लेख किया गया है। उत्तर वैदिक काल में बाद की शताब्दियों मे स्त्रियों पर प्रतिबन्ध लगना प्रारम्भ हो जाता है।[3] शतपथ ब्राह्मण में उन्हें *अनृत* कहा गया[4] और उनके सामाजिक और धार्मिक अधिकारों को समाप्त करने की चेष्टा की गयी और यही से स्त्रियों के अधिकारों पर कुठाराघात होने लगा। यद्यपि बौद्ध काल में स्त्रियों के प्रति मानवीय व्यवहार किया गया, उन्हें बौद्ध संघ में प्रवेश देकर स्त्रियों के सामाजिक, धार्मिक स्तर को सुधारने का प्रयास किया गया किन्तु बौद्ध काल तक आते-आते ब्राह्मण साहित्यों में स्त्रियों पर शिक्षा से लेकर सभी सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक अधिकारों को छीनकर घर में कैद कर दिया गया[5] जैसा कि मनुस्मृति[6] में कहा गया है *अस्वतंत्राः स्त्रियाः कार्याः पुरूषै स्वैर्दिवानिशम्। विषयेषु च सज्जन्त्यः संस्थाप्या आत्मनो वशे।।*

* शोध छात्रा, उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

अर्थात् पुरूषों को अपनी स्त्रियों को (सदैव) दिन हो या रात अपने अधीन रखने चाहिये। (रूप-रसादि) विषयों में आसक्त होने पर भी उन्हें अपने वश में रखे।

स्त्रियों का सर्वाधिक शोषण आर्थिक किया गया। पिता के घर से प्राप्त धन पर भी स्त्रियों का अधिकार नहीं रह गया। स्त्री की अपनी स्वयं की सम्पत्ति, जिस पर उसका पूर्ण अधिकार होता है, वह *स्त्री-धन* कहा जाता है। मनु के मतानुसार वैवाहिक अग्नि के सम्मुख जो कुछ कन्या को दिया जाता है, जो कन्या को पति-गृह जाते समय मिलता है, जो स्नेहवश उसे दिया जाता है, जो माता-पिता और भाई से मिलता है, वह सब *स्त्री-धन* है।[7] सम्पत्ति विभाजन के समय पत्नी या माता का पुत्र के समान अंश, भाईयों के अंश के चतुर्थांश आदि को भी अपरार्क ने *स्त्री-धन* के अन्तर्गत उल्लिखित किया है।[8] मनुस्मृति में कहा गया है कि सभी भाई अपने-अपने अंश का चौथाई अंश बहनों को दें। जो भाई अपने चौथाई अंश में से बहनों को नहीं देते वे पतित होते हैं।[9]

स्त्रीधन का मुख्यतः उत्तराधिकारी पुत्री होती है क्योंकि *पुरूष का शुक्र अधिक होने से पुमान (पुरूष) उत्पन्न होता है, स्त्री का रज अधिक होने से पुत्री।* अतः कन्या में स्त्री के अवयव अधिक होने के कारण मातृधन उसको प्राप्त होना चाहिये, पुत्र में पुरूष का अवयव अधिक होने से पितृधन पुत्र को मिलता है।

जहाँ तक *स्त्री-धन* पर स्त्री के अधिकार की बात है। पूर्व वैदिक युग में पैतृक सम्पत्ति में पुत्र-पुत्री के समान अधिकार होने का संकेत है, किंतु उत्तर-वैदिक काल में परवर्ती साहित्य में स्त्रियों के आर्थिक अधिकार समाप्त से हो गये। स्मृति ग्रंथों में पति की महत्ता को ही अधिक स्वीकार किया गया है।[11] इसलिये स्मृतियाँ भी यही व्यवस्था देती हैं कि स्त्रियों को अपने स्त्रीधन के व्यय में भी पति की अनुमति लेनी चाहिये। स्त्रीधन के विषय मे कहा गया है कि किसी कारण यदि पति को आवश्यकता पड़ जाये कि अपने लिये वह स्त्रीधन के किसी भाग का उपयोग करें तो उसका धर्म है कि वह उस धन के भाग को सूद सहित लौटा दे, पर यह अधिकार केवल पति को दिया गया है। यदि किसी कारणवश पति उस धन को अपने जीवनकाल में न लौटा सके तो उसके पुत्र का यह कर्त्तव्य होता है कि उस धन को ब्याज के साथ माँ को लौटा दे।[12]

स्त्री के मरने के बाद यदि उसकी सन्तान हो तो स्त्रीधन सबसे पहले पुत्री को दिया जाये। यदि स्त्री की कई लड़कियाँ हो तो उनमें से जो अविवाहित हों उसको प्राथमिकता देनी चाहिये। अविवाहितों को इसलिये प्राथमिकता मिली कि उसका अभी विवाह होना है, अतएव माता की ओर से उसे कुछ *स्त्रीधन* में मिलना चाहिये। परन्तु जब सभी लड़कियाँ विवाहित हों तो जो जीवन-यापन में कठिनाई की अनुभूति करती हो, उसे प्राथमिकता दी गई है। यदि ऐसा कोई जीवित न हो तो लड़की की लड़की को अर्थात् नतिनी को स्त्रीधन की अधिकारिणी बनने का अधिकार है।[13] परन्तु हमारे समाज पितृ प्रधान है अतएव बाद के विचारकों ने यह मान्यता नहीं दी कि स्त्रीधन नारी उत्तराधिकारों में विभक्त किया जाये। समाज में स्त्रीधन पर भी पुत्र को अधिकार देकर स्त्री के अधिकार को अस्वीकार कर दिया गया है।

इस प्रकार नारी के प्रति समाज एवं व्यवस्थाकारों का व्यवहार दिनों-दिन कठोर होता हुआ दिखायी पड़ता है। उत्तर वैदिक काल में पुरूष का उसके प्रति अविश्वास तथा अनुत्तरदायित्व की भावना बढ़ती गई। उसे हीन और निम्न भावना से देखा जाने लगा। महाभारत में कहा गया है कि यदि कोई व्यक्ति स्त्री के दोषों को ही अपने सौ वर्ष के जीवनभर, सौ जिह्वाओं से गिनता रहे तो भी वह उसके दोषों का बखान पूरा किये बिना ही मर जायेगा।[14]

कन्या को पुत्र के हिस्से का चौथाई पाने की संस्तुति जीमूतवाहन और विज्ञानेश्वर ने भी की है तथा यह स्पष्ट कहा है कि कन्या का परिवार में अधिकारी स्थान है।[15] प्राचीन काल में पश्चिम सभ्यताओं में नारी को सम्पत्ति माना जाता था उसकी न कोई अपनी प्रतिष्ठा होती थी और न स्वतंत्रता। पति जब चाहे तब उसे बेच सकता था।[16] इस प्रकार अधिकार भारत में कभी भी पति के लिये प्रयोग नहीं किया गया और न ही धर्मशास्त्रों ने पति के हाथों को ऐसे अधिकारों को दिया गया है किन्तु कुछ उदाहरण ऐसे हैं जो स्त्रियों के अस्तित्व पर प्रश्न चिह्न लगाते हैं। महाभारत में सम्राट युधिष्ठिर द्वारा अपनी पत्नी द्रौपदी की बाजी लगाना कहाँ तक उचित कहा जा सकता है। यह परम्परा पूर्व वैदिक काल से ही दिखायी पड़ती है। यद्यपि इस काल में स्त्रियों की स्थिति ठीक थी किन्तु ऋग्वेद के द्यूत मंत्र में पति को अधिकार दिया गया है कि वह जब चाहे स्त्री को दाव पर लगा सकता है।[17] इस प्रकार के उदाहरण समाज के पुरूष प्रधान समाज का घिनौना

रूप प्रकट करते हैं जिसमें स्त्री को एक वस्तु के रूप में व्यवहृत किया गया। जबकि शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि *बिना पत्नी पुरूष पूर्ण नहीं होता है और इसे यज्ञ करने का अधिकार नहीं होता है।* विडम्बना यह है कि जिस स्त्री के प्रति समाज का व्यवहार कहीं-कहीं पशुवत् दिखायी पड़ता है, वहीं स्त्री पुरूष की न केवल पत्नी होती है अपितु माँ और बहन भी होती है। ऐसे स्थिति में उसके साथ कटुतापूर्ण व्यवहार क्या उचित है ?

आज भी समाज में स्त्री की सम्पत्ति (स्त्री-धन) पर उसका अधिकार कम तथा उसके परिवार एवं पति का अधिकार अधिक माना जाता है। नारद जैसे स्मृतिकारों ने पुत्री एवं पुत्र को समान माना है और उसे (पुत्री) उत्तराधिकार से वंचित न करने का सुझाव दिया है। प्राचीन काल हो या आधुनिक काल पुत्री को सदैव पुत्र की अपेक्षा निम्न माना गया है जबकि आधुनिक युग में महिलायें प्रशासन से लेकर प्रत्येक क्षेत्र में अपनी उपस्थिति दर्ज करा चुकी हैं किन्तु समाज के दकियानुसी विचारों और कतिपय रूढ़िवादी मान्यताओं के कारण आज भी स्त्री समाज अपने अस्तित्व के लिये संघर्षरत है। संभव है कि आने वाले दशक महिलाओं के सम्मान, प्रतिष्ठा एवं आर्थिक रूप से अधिक सुदृढ़ करने में सक्षम हो।

संदर्भ स्रोत

[1]पाण्डेय, जे0 एन0- *पुरातत्त्व विमर्श,* पृष्ठ संख्या 10-25

[2]पाण्डेय, गोविन्द चन्द्र- *वैदिक संस्कृति,* पृष्ठ ंख्या 35

[3]वही, पृष्ठ ंख्या 37

[4]*शतपथ ब्राह्मण* (सम्पादित)- ए0 बेबर, 1925

[5]मिश्र, डॉ0 जयशंकर- *प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास,* पृष्ठ ंख्या 115

[6]पाण्डेय, डॉ0 रामनिहोर- *मनुस्मृति*

[7]*मनुस्मृति,* 9/194

[8]*अपरार्क,* पृष्ठ ंख्या 751

[9]*मनुस्मृति,* 10/200

[10]विज्ञानेश्वर- *मिताक्षरा,* 2/117

[11]मिश्र, डॉ0 जयशंकर- *प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास,* पृष्ठ ंख्या 425

[12]*Position of Women in Hindu Civilization;* Altekar, A.S., P.p 272

[13]मिश्र, डॉ0 जयशंकर- *प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास,* पृष्ठ ंख्या 427

[14]*महाभारत,* 12.76

[15]विज्ञानेश्वर- *मिताक्षरा,* याज्ञवल्क्य 2/135

[16]राय, उदय नारायण- *विश्व सभ्यता,* पृष्ठ ंख्या 125

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) **9,67-71**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 18 जून 2015

"महात्मा गाँधी एवं आचार्य विनोवा भावे के शैक्षिक दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन"

श्री जय प्रकाश नारायण* एवं डॉ. नरेन्द्र कुमार चौरसिया**

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *"महात्मा गाँधी एवं आचार्य विनोवा भावे के शैक्षिक दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखक *जय प्रकाश नारायण एवं नरेन्द्र कुमार चौरसिया* घोषणा करते हैं कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेते हैं, क्योंकि हमने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देते हैं। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह हमारी मौलिक कृति है। हम शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देते हैं। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देते हैं।

वर्तमान शोध की पृष्ठभूमि

शिक्षा और समाज दोनों एक दूसरे के घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित हैं, विभिन्न शिक्षा दार्शनिकों ने समय-समय पर समाज एवं शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में प्रभावों का विश्लेषण किया है। यह सत्य है कि सामाजिक पृष्ठभूमि के अनुसार ही दार्शनिकों के विचार प्रासंगिक होते हैं।

बालक की शिक्षा की प्रक्रिया बालक के जन्म के पूर्व से ही प्रारम्भ हो जाती है। शिक्षा शब्द अपने में ही इसकी सम्पूर्णता को समेटे हुए है, व्यक्ति के जन्म से लेकर मृत्यु होने तक व्यक्ति प्रतिक्षण कुछ न कुछ सीखता रहता है, सीखने का सम्बन्ध प्रत्यक्ष रूप से शिक्षा से है, हम जैसे-जैसे सीखते जाते हैं, वैसे-वैसे शिक्षित होते जाते हैं।

दर्शन, ज्ञान से सम्बन्धित है और ज्ञान का सम्बन्ध शिक्षा से है। नया दर्शन, नई शिक्षा को जन्म देता है एवं नये शैक्षिक विचारधारा के अनुरूप दार्शनिकों के विचार निश्चित किये जाते हैं।

आज भारतीय समाज एक भयावह, परसंस्कृति गमन के दौर से गुजर रहा है। विकास के इस युग में हम अपनी संस्कृति को भूलते रहे हैं, संस्कृति को युगों-युगों तक जीवित रखना सदियों से शिक्षा का कार्य रहा है। विश्व का प्राचीनतम् इतिहास इस बात का साक्षी है कि भारतीय संस्कृति का स्थान संसार की अन्य सभी संस्कृतियों में प्राचीन है। जब विश्व की अन्य संस्कृतियाँ नवजात शिशु की तरह थीं, उस समय भारतीय संस्कृति उन्नति के शिखर पर थी।

* प्रधानाचार्य, पी. सी. पी. एम. इं. कॉलेज दरियापुर [घीघा] फतेहपुर (उत्तर प्रदेश) भारत
** प्रधानाचार्य, जनप्रिय औ. इं. कॉलेज [असधना] कानपुर नगर (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

भारत आज जो कुछ भी है, उसकी रचना में भारतीय जनता के प्रत्येक भाग का योगदान है। भारतीय महापुरूषों ने सदैव ही भारतीय शिक्षा को नई दिशा देने की पहल की है, शिक्षा ही वह सम्यक माध्यम है, जिसके माध्यम से व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व का आभास होता है।

भारत में धर्म प्रचार के साथ-साथ जिन महापुरूषों ने शिक्षा समस्याओं को दूर करने हेतु अपने मौलिक विचारों को प्रस्तुत किया है, उन भारतीय मनीषी, चिन्तकों में स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द, महात्मा गाँधी, अरविन्द घोष आदि प्रमुख हैं। सामाजिक विचारकों में मदन मोहन मालवीय, आचार्य नरेन्द्र देव तथा आचार्य विनोवा भावे जैसे विचारकों ने शिक्षा और समाज के सम्बन्ध को जोड़ने का कार्य किया है।

किसी भी दर्शन के दो रूप होते हैं - एक विचार जो सम्बन्धित विचारक द्वारा दिये जाते हैं, दूसरा उस विचार को क्रियान्वित करने वाला विचारक जिसे सृजक कहा जा सकता है।

महात्मा गाँधी तथा आचार्य विनोवा भावे शैक्षिक सामाजिक विचारधारा के दो प्रमुख बिन्दु हैं। महात्मा गाँधी ने व्यावहारिक सिद्धान्तों पर अपने विचार प्रस्तुत किये हैं, वहीं आचार्य विनोवा भावे ने शिक्षा में सामाजिक विचारधारा के समावेश को प्रमुख स्थान दिया है।

महात्मा गाँधी आधुनिक भारत के महान नेताओं में सर्वाधिक बुद्धिमान, कर्मठ तथा उद्देश्यों के प्रति समर्पित विभूति थे। वे चिन्तन और क्रिया में किसी प्रकार का विरोध उचित नहीं समझते थे। गाँधी जी एक प्रख्यात मनीषी, चिन्तक होने के साथ-साथ एक कुशल शिक्षा-शास्त्री भी थे। गाँधी जी ने तत्कालीन शिक्षा का इस आधार पर विरोध किया कि यह व्यक्तिगत भावों एवं धर्मों पर आधारित है एवं यह विभिन्न निषेधात्मक तथ्यों पर ज्यादा ध्यान देती है। गाँधी जी ने कहा है कि सैद्धान्तिक शिक्षा केवल जानकारियों का पुंज मात्र है। उनके अनुसार शिक्षा ऐसी होनी चाहिये, जिससे बालक शिक्षा प्रापत होने के बाद बेकारी का अनुभव न करे।

आचार्य विनोवा भावे का सर्वोदय दर्शन गाँधी जी के सिद्धान्तों पर आधारित था परन्तु विनोवा जी ने उसे नवीन व्यापक रूप में प्रस्तुत कर एक व्यावहारिक आन्दोलन में परिवर्तित कर दिया। सर्वोदय का शाब्दिक अर्थ है सभी का उदय या सभी व्यक्तियों का विकास अर्थात सर्वोदय वह सिद्धान्त है जिसमें विषमता का स्थान नहीं है। बल्कि लिंग जाति, धर्म, भाषा तथा क्षेत्रादि रहित ऐसे समाज का निर्माण है जिसमें सभी आर्थिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक रूप से समुन्नत हों। सर्वोदय की प्रबल धारणा का विनोबा जी में रस्किन द्वारा रचित पुस्तक 'अन टू दि लास्ट' का गुजराती में अनुवाद करते समय उदय हुई जिसे उन्होंने मूर्त रूप दिया।

सर्वोदय दर्शन सभी प्राणियों की भलाई की इच्छा रखता है, कोई दुःखी न हो सभी प्रेम से मिल जुलकर बाँटकर हर चीज का उपयोग करें। विनोवा जी ने महात्मा गाँधी की भावनाओं के अनुरूप आर्थिक समानता के लिए कुटीर उद्योगों को महत्व दिया। दोनों महान विचारक कहते थे कि गाँव को एक इकाई मान लो, गाँव को आत्म निर्भर बनाओ, हर चीज का उत्पादन गाँव से करो। कारखानों एवं बड़ी मशीनों के उत्पादन पर न निर्भर रहो। जैसे तेल कोल्हू से गाँव के लोग निकालें, गाँव वाले उसे खरीदें, एक व्यक्ति को रोजगार मिलेगा तथा किसान सरसों की खेती करके मुनाफा कमा लेगा। सामग्री में मिलावट नहीं होगी। गाँधी जी से आज्ञा लेकर विनोवा भावे जी ने सर्वोदय संघ की स्थापना की तथा अपनी पद यात्राओं में देखा कि किसी के पास सैकड़ों हजारों बीघे जमीन हैं तो कोई भूमिहीन है। भूमिहीनों की अन्तः वेदना से अनुप्राणित होकर उन्होंने मन में 'भू-दान' आन्दोलन का संकल्प ले लिया और जमींदारों के हृदय परिवर्तन करके भू-दान करा दिया। जो काम सरकारी कानून नहीं करा सका वह काम सन्त की वाणी ने सफलतापूर्वक किया।

यदि हम महात्मा गाँधी को भारतीय शैक्षिक दर्शन का शिक्षा मनीषी मानते हैं, तो आचार्य विनोवा भावे ने गाँधी जी की विचारधारा को समाज में प्रतिस्थापित करने का समर्थन किया। आचार्य विनोवा भावे प्राचीन भारतीय संस्कृति तथा पाश्चात्य ज्ञान में विज्ञान में समन्वय लाना चाहते थे, जिससे आधुनिक भारत का प्रत्येक व्यक्ति प्राचीन संस्कृति का ही नहीं वरन् आधुनिक ज्ञान का भी ज्ञाता हो। आचार्य विनोवा भावे के अनुसार शिक्षा ऐसी होनी चाहिए, जो बालक के बौद्धिक विकास के साथ-साथ सामाजिक और सांस्कृतिक विकास से भी सम्बन्धित हो। आचार्य विनोवा भावे महात्मा गांधी को अपना गुरु मानते थे महात्मा गाँधी तथा आचार्य विनोवा भावे दोनों के शैक्षिक विचारों के तुलनात्मक अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष शैक्षिक दर्शन को एक नवीन

दिशा प्रदान करेगा क्योंकि तुलनात्मक दार्शनिक अध्ययन शिक्षा के नवीन आयामों के उद्भव के लिये सदैव आवश्यक साधन रहा है।

सम्बन्धित साहित्य का सर्वेक्षण

आचार्य विनोवा भावे के दर्शन, राजनैतिक दर्शन, सामाजिक दर्शन, धार्मिक दर्शन एवं यहाँ तक कि शिक्षा दर्शन पर भी अनेकों विश्वविद्यालयों में शोध कार्य हुए हैं। सिंह (1978) ने आचार्य विनोवा भावे के सर्वोदय दर्शन का अध्ययन किया। इसी प्रकार ए0के0 मिश्रा (1985) ने विनोवा भावे के सामाजिक दर्शन पर शोध कार्य किया। गुप्ता, एस0के0 (1989) ने गांधी एवं विनोवा भावे के समाज दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन किया। इसी प्रकार विभिन्न विश्वविद्यालयों में आचार्य विनोबा भावे के दर्शन पर लघु शोध भी हुए हैं। गाँधी दर्शन के विविध पक्षों पर अनेक विश्वविद्यालयों में कार्य हुए हैं।

अब तक के साहित्य अध्ययन के उपरान्त यह अवगत हुआ है कि अधिकांश अध्ययन व्यक्तिगत दर्शन पर आधारित है तथा महात्मा गाँधी एवं आचार्य विनोवा भावे के विचारों पर तुलनात्मक अध्ययन का अभाव है। दार्शनिक शोध में आकड़ों एवं गणनाओं का उतना महत्व नहीं होता, बल्कि दार्शनिक शोध तमाम बिखरे तथ्यों का एकसंग्रह होता है। शोधकर्ता ने उपलब्ध साहित्य के अध्ययन के उपरान्त यह निष्कर्ष निकाला है, कि समस्त एकल दार्शनिक शोध एकांगी है तथा महात्मा गाँधी एवं आचार्य विनोवा भावे दोनों के शैक्षिक दर्शन पर आधारित संयुक्त शोध का अभाव है।

अस्तु शोधकर्ता ने यह विवेकानुसार निर्णय लिया कि दो महान दार्शनिकों के शैक्षिक दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन करके प्राप्त निष्कर्ष ज्यादा महत्वपूर्ण हैं यद्यपि महात्मा गाँधी पर साहित्य की उपलब्धता आचार्य विनोवा भावे के साहित्य की उपलब्धता से कहीं अधिक है, फिर भी शोधकर्ता दोनों विचारकों से सम्बन्धित साहित्यका अध्ययन करके तुलनात्मक रूप में अपने विचारों को प्रस्तुत करेगा।

शोध की आवश्यकता

वर्तमान समय में भारतीय शिक्षा जगत परसंस्कृतिकरण के दौर से गुजर रहा है, इसलिये आज आवश्यकता है कि शिक्षा में ऐसे विचारों का समावेश किया जाय, जिसका अनुकरण करके भारतीय समाज को उसकी वास्तविक दशा दी जा सके। महात्मा गाँधी एवं उनके शिष्य विनोवा भावे के विचारों को संकलित एवं व्यवस्थित करके संयुक्त रूप में नवीन ग्रन्थ के माध्यम से जनमानस तक विचारों को पहुँचाना ही शोधकर्ता का मुख्य उद्देश्य है। महात्मा गाँधी तथा आचार्य विनोवा भावे के संयुक्त शैक्षिक दर्शन से समाज को अवगत कराना परम आवश्यक है।

शोध समस्या की आवश्यकता महात्मा गाँधी के विचारों से शोध की साम्यता तथा आचार्य विनोवा भावे जी के सामाजिक प्रतिबद्धता से प्रभावित होना भी है, इसलिये शोधकर्ता ने इस महत्वपूर्ण एवं तुलनात्मक सम्बन्धयुक्त समस्या का चयन किया। शोधकर्ता का यह विश्वास है कि दोनों महान विचारकों के तुलनात्मक अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष शिक्षा को नवीन दिशा प्रदान करेंगे।

शोध का उद्देश्य

1. महात्मा गाँधी तथा आचार्य विनोवा भावे के जीवन दर्शन का अध्ययन करना।
2. महात्मा गाँधी के शैक्षिक दर्शन का अध्ययन करना।
3. आचार्य विनोवा भावे के शैक्षिक दर्शन का अध्ययन करना।
4. महात्मा गाँधी के सामाजिक दर्शन का अध्ययन करना।
5. आचार्य विनोवा भावे के सामाजिक दर्शन का अध्ययन करना।
6. महात्मा गाँधी तथा आचार्य विनोवा भावे के शैक्षिक दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन करना।
7. वर्तमान भारतीय शिक्षा जगत में दोनों विचारकों के प्रभाव का अध्ययन करना।

शोध का महत्व

किसी भी शोध का महत्व उसमें अन्तर्निहित तत्वों पर आधारित होता है। महात्मा गाँधी तथा आचार्य विनोवा भावे का संयुक्त शैक्षिक दर्शन भारतीय दर्शन को प्रभावित करता है, यदि आचार्य विनोवा भावे के एवं महात्मा गाँधी के शिक्षा दर्शन के आधार पर वर्तमान शिक्षा को निर्धारित किया जाता है, तो इससे भारतीय शिक्षा को निश्चित ही नयी दिशा प्राप्त होगी।

समस्या कथन, ''महात्मा गाँधी एवं आचार्य विनोवा भावे के शैक्षिक दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन''

शोध विधि

प्रस्तुत शोध की प्रकृति दार्शनिक है, इसलिये इस शोध के लिये ऐतिहासिक एवं विश्लेषणात्मक विधि का प्रयोग किया जायेगा, साथ ही साथ शोधकर्ता दोनों शिक्षाशास्त्रियों से सम्बन्धित पुस्तकों का अध्ययन करेगा तथा शोधकर्ता अपने विवेक के आधार पर निष्कर्षों की प्राप्ति करेगा। तथ्य संग्रह में प्राथमिक स्रोत तथा गौण (द्वितीयक) स्रोत दोनों स्रोतों से उपलब्ध तथ्यों को शोध में स्थान दिया जायेगा।

परिकल्पना

1. महात्मा गाँधी का शैक्षिक दर्शन पूर्णतः यथार्थवादी दर्शन है जिसके अनुसार वर्तमान ही सत्य है।
2. महात्मा गाँधी के विचारों के अनुसार शिक्षा व्यक्तिगत विकास का साधन है।
3. आचार्य विनोवा भावे के अनुसार शिक्षा का लक्ष्य अच्छे समाज की स्थापना करना है।
4. आचार्य विनोवा भावे के अनुसार अनुशासन नितान्त प्रभावात्मक विचारधारा है, जो व्यक्ति में स्वयं उत्पन्न होती है।
5. महात्मा गाँधी एवं आचार्य विनोवा भावे के संयुक्त विचारों ने संस्कृति के विकास में अपना ध्यान केन्द्रित किया है।
6. महात्मा गाँधी एवं आचार्य विनोवा भावे के संयुक्त सर्वोदयी विचारों को अपनाकर समाज में धनी एवं निर्धन उच्च एवं निम्न जाति व्यवस्था आदि कुरीतियों को दूर किया जा सकता है।

निष्कर्ष

महात्मा गाँधी भारतीय संस्कृति के प्रबल पक्षधर एवं भारतीय युवाओं के प्रेरणा स्रोत हैं। महात्मा गाँधी ने अपनी मेधा शक्ति के बल पर सम्पूर्ण विश्व को आश्चर्य चकित कर दिया था।

महात्मा गाँधी एवं आचार्य विनोवा भावे ने शिक्षा के उत्थान के साथ ही देश को गुलामी की बेड़ियों से मुक्त कराने में एवं यहाँ की संस्कृति एवं सभ्यता के विकास में अपना-अपना योगदान दिया। आचार्य विनोवा भावे राष्ट्र निर्माण एवं देश सेवा को अपना स्वाभाविक कर्तव्य मानते थे।

हम महात्मा गाँधी एवं आचार्य विनोवा भावे के ऋणी हैं, जिन्होंने हमारे लिये ऐसे विचारों को हमारे सम्मुख प्रस्तुत किया है, जिनका प्रयोग युगों-युगों तक भारतीय पीढ़ी करती रहेगी और जीवन के लक्ष्य को प्राप्त करने में हमारा मार्गदर्शन करेगी।

सीमाएँ ; प्रस्तुत अनुसंधान कार्य महात्मा गाँधी एवं आचार्य विनोवा भावे के शैक्षिक दर्शन, सर्वोदयी दर्शन तथा महात्मा गाँधी एवं आचार्य विनोवा भावे के शैक्षिक दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन तक सीमित है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

बुच, एम0बी0- सर्वे ऑफ एजूकेशन (एक से पाँच) एन0सी0ई0 आर0टी0 नयी दिल्ली
डॉ0 सीताराम जायसवाल- विश्व के कुछ महान शिक्षक
डॉ0 सरयू प्रसाद चौबे- भारत के कुछ शिक्षा दार्शनिक

डॉ0 आत्माराम मिश्रा- भारतीय शिक्षा के प्रवर्तक
प्रो0 लक्ष्मी नारायण गुप्त- महान पाश्चात्य एवं भारतीय शिक्षाशास्त्री, आलोक प्रकाशन, इलाहाबाद
डॉ0 रामशकल पाण्डेय- विश्व के श्रेष्ठ शिक्षाशास्त्री, अग्रवाल पब्लिशेन्स आगरा
डॉ0 सरयू प्रसाद चौबे (1998)- रीसेन्ट फिलोसफी ऑफ एजुकेशन, मयूर पेपर वर्क्स नोएडा
कुमारप्पा, भारतून (सम्प0)- सर्वोदय नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद
एम0के0 गाँधी- सत्य के प्रयोग नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद
धावन, गोपीनाथ (1963)- सर्वोदय तत्व दर्शन, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर अहमदाबाद
भट्ट, कृष्णदत्त- बाबा विनोवा भावे, सर्वोदय जीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद
निर्मलादेश पाण्डेय- विनोवा और सर्वोदय दर्शन, सर्वोदय नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) 9,77-80
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 30 जून 2015

सम्पूर्ण व्यक्तित्व विकास में शिक्षा की भूमिका

डॉ. धर्मेन्द्र शुक्ल*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *सम्पूर्ण व्यक्तित्व विकास में शिक्षा की भूमिका* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *धर्मेन्द्र शुक्ल* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

भूमिका

भारत की अपनी सभ्यता, संस्कृतिगत चेतना में शिक्षा को नेत्र और प्रकाश के नाम से अभिहित किया गया है। नेत्र का काम है देखना और प्रकाश का काम है, अन्धकार का नाश करना। इसका तात्पर्य यही है कि शिक्षा व्यक्ति को उचित, अनुचित को देखकर परखकर चलने में सहायता देती है और उससे प्राप्त होने वाला ज्ञान का प्रकाश, अज्ञान रूपी अंधकार का नाश करके जीवन के सत्पथ का निर्माण करने में सहायता पहुँचाता है। बुराइयों पर विजय पाकर हीनताओं एवं कुंठाओं का परि-त्याग करके शिक्षा द्वारा प्राप्त ज्ञान का प्रकाश व्यक्ति को जीवन के सत्यों का ज्ञान कराकर, उसे जीवन के चरम लक्ष्यों तक पहुँचाता है। परातत्व सम्बन्धी विद्याओं का विकास भी शिक्षा के अध्यवसाय से ही सम्भव हो सका है।

व्यापक अर्थों में शिक्षा का मूल लक्ष्य, व्यक्ति का सर्वांगीण विकास करना है। विषय ज्ञान के साथ-साथ व्यक्ति का चरित्र निर्माण, उसकी सद्वृत्तियों का विकास तथा उसे आगामी जीवन के लिए तैयार करना ही अच्छी शिक्षा का प्रतीक है। व्यक्ति समाज और राष्ट्र की सम्पत्ति है। अगर शिक्षा उसका सही विकास नहीं करती, तो वह परिवार, समाज एवं देश के प्रति अपने कर्त्तव्यों का पालन ठीक प्रकार से नहीं कर सकता। सादा जीवन-उच्च विचार, हृदय और मस्तिष्क का संतुलित विकास, अपने कर्त्तव्यों का ज्ञान ही अच्छे विद्यार्थी का जीवन लक्ष्य होना चाहिए। इन्हीं लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु प्राचीन काल में गुरुकुलों में शिक्षा दी जाती थी ताकि छात्र शहर की तड़क-भड़क से दूर, सादगीपूर्वक ऐसी शिक्षा प्राप्त कर सके जो आजीविका कमाने के साथ-साथ उन्हें आने वाले जीवन के लिए संतुलित कर सकें।

''देह और आत्मा में अधिक से अधिक जितने भी सौन्दर्य और जितनी भी सम्पूर्णता का विकास हो सकता है, उसे सम्पन्न करना ही शिक्षा का लक्ष्य है।''

* असि. प्रोफेसर, शिक्षा संकाय, नेहरु ग्राम भारती विश्वविद्यालय कोटवां [जमुनीपुर, दुबावल] इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

वैयक्तिक और सामाजिक पूर्णता प्राप्त करना ही शिक्षा का लक्ष्य होना चाहिए, क्योंकि व्यक्ति का समाज से अलग कोई अस्तित्व नहीं है। अतः शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो व्यक्ति और समाज के बीच सामंजस्य स्थापित कर सके। देशकाल और परिस्थितियों के कारण उनमें संघर्ष नहीं होना चाहिए। उनमें संकीर्ण राष्ट्रीयता के स्थान पर विश्वबन्धुत्व की भावना का विकास होना चाहिए।

''शिक्षा मानवता के लिए वैसे ही है, जैसे संगमरमर के टुकड़े के लिए शिल्पकला।'' भारतीय संस्कृति को सुरक्षित रखना भी भारतीय शिक्षा का लक्ष्य होना चाहिए। प्रत्येक भारतीय में भारत की भाषाओं, धर्म तथा संस्कृति के प्रति आदर-भाव होना चाहिए। राष्ट्रीय भावना, देशभक्ति, त्याग, सेवाभाव से युक्त होकर हम अपना जीवन सार्थक करने के साथ ही देश तथा समाज का गौरव बढ़ायें, यही हमारी शिक्षा का लक्ष्य होना चाहिए।

शिक्षा का लक्ष्य निश्चित दिशा ज्ञान होना चाहिए, क्योंकि वर्तमान शिक्षा प्रणाली निश्चित दिशा ज्ञान और निर्माण में किसी भी प्रकार से सहायक नहीं हो पा रही है। तभी तो शिक्षा ग्रहण कर रहे किसी भी सामान्य युवक से जब पूछा जाता है कि उसकी जीवन की भावी योजना क्या है तो वह कुछ भी बता पाने में असमर्थ होता है। अधिक से अधिक वह यही कहेगा कि पहले बी0ए0 या एम0ए0 तो पास कर लें फिर सोचा या देखा जाएगा। यह सब व्यवस्था का दोष है। जो अंग्रेजों ने साम्राज्यवादी इच्छाओं को पूरा करने के लिए शिक्षा के नाम पर एक मशीन के रूप में भारत में कायम की थी, उस मशीन का सीधा सम्बन्ध अग्रेजों ने रोटी और पेट पालने के साथ जोड़ दिया था। अंग्रेज चले गए, शासन बदल गया, पर वह बीमार मशीन आज भी उसी स्थिति में उसी स्थान पर लगी, शिक्षा के नाम पर केवल आधे-अधूरे साक्षरों का अनवरत उत्पादन करती जा रही है। अतः उत्पाद तो बिगड़कर असुन्दर तथा कुरूप हो ही रही है, अपनी विद्रूप दुर्गंध से देश, समाज, राष्ट्रीयता और मनुष्य तक को दुर्गन्धित तथा कुरूप बना रहे हैं। लेकिन अत्यधिक खेद का विषय यह है कि भौतिक पदार्थों का उत्पादन करने वाले करखानों की बीमार एवं अस्वस्थ मशीनों को सुधार की ओर तो सरकार का ध्यान जा रहा है परन्तु इस मशीन के अस्वस्थता को दूर करने का कोई भी प्रयत्न नहीं हो रहा। अतः शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जिससे विद्यार्थी को भटकना न पड़े, जिस लक्ष्य को लेकर वह आगे बढ़ा है, उसे वह प्राप्त करे।

शिक्षा का लक्ष्य व्यावहारिक ज्ञान देना होना चाहिए। आज विद्यालयों में अनेक विषयों का सामान्य ज्ञान तो करा दिया जाता है परन्तु उनका व्यावहारिक प्रयोग तथा महत्व क्या है? इसका ज्ञान नहीं हो पाता। दूसरे, आज की शिक्षा एक सीमा तक अरुचिकर भी है। इसे रूचिकर बनाना चाहिए। शिक्षार्थी की रूचियों का प्रायः उसमें ध्यान नहीं रखा जाता। तभी तो इंजीनियरों की बाढ़ आ जाती है, तो कभी डॉक्टरों की, तो कभी गणितज्ञों की। लेकिन उस बाढ़ में बहकर आने वालों में न तो इंजीनियर ही होता है, न वैज्ञानिक, न डॉक्टर और न ही गणितज्ञ ही। वास्तव में ये सब आंधी के आम ही होते हैं। अतः शिक्षा को प्रतिबंधित करके व्यावहारिक बनाया जाए।

शिक्षा का लक्ष्य एक स्वस्थ, ईमानदार नागरिक तैयार करना होना चाहिए। आज का विद्यार्थी उस अभिमन्यु के समान है, जो चारों ओर से समस्याओं के चक्रव्यूह में घिरा हुआ है। अकेले अभिमन्यु को युद्ध क्षेत्र में सात महारथियों ने घेर रखा था। आज भी विद्यार्थी राजनीति, समाज, अर्थतंत्र, शिक्षा, अधिकारी तथा शासक वर्ग से घिरा हुआ है। वह स्वयं को ऐसे में नितान्त अकेला महसूस कर रहा है। चारों ओर फैले हुये भ्रष्टाचार ने उसे पद-दलित कर दिया है। वह ईमानदार नागरिक नहीं बन पाता इसलिए हमारी शिक्षा ऐसी होनी चाहिए, जो उसमें नैतिक गुणों को भर सकें।

शिक्षा का लक्ष्य विद्यार्थी में उच्च चरित्र निर्माण होना चाहिए। शिक्षा और चरित्र वर्तमान परिप्रेक्ष्य में एकपक्षीय प्रश्न के समान है। समाज में बढ़ती चरित्रहीनता या भौतिक मूल्यों के ह्रास का कारण खोजने पर हम पाते हैं कि बढ़ती व्यावसायिकता व प्रगति या उन्नति के लिए प्रतिद्वन्द्विता भी इसके कारण हैं। आवश्यकता है, शिक्षा, व्यवसाय, प्रगति व चारित्रिक गुणों में सामंजस्य स्थापित करने की।

आज की शिक्षा ऐसी होनी चाहिए, जो जिज्ञासु छात्रों की जिज्ञासा को शांत कर सके, क्योंकि शिक्षा कोई बाजार में बिकने वाली वस्तु नहीं है कि इसे जो चाहे पैसों से खरीद ले। यदि ऐसा होता तो आज के हर धनवान माता-पिता की सन्तान शिक्षित होती और उनकी झोली में डिग्रियों की भरमार होती। वास्तव में ऐसा नहीं है। शिक्षा प्राप्त करने के लिए शिक्षार्थी को जिज्ञासु बनना पड़ता है। पूर्ण श्रद्धा व समर्पण से गुरू चरणों में आना पड़ता है। देश के भावी कर्णधारो से यही अपेक्षा की जाती

है कि वे कर्तव्यों को समझें और शिक्षा को एक व्यवसाय मात्र न मानकर भावात्मक स्तर पर शिक्षक के प्रति नैतिक व समादरपूर्ण तालमेल रखें।

स्वामी दयानन्द जी की दृष्टि में सभी मनुष्य शिक्षा प्राप्त करने के अधिकारी हैं और आज जन्म या जाति के आधार पर किसी को शिक्षा के अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता तथापि योग्यता आदि की दृष्टि से पात्रता का यथा योग्य विचार आवश्यक है। शिक्षा द्वारा उसमें सत्य ज्ञान तथा सद्भावना का विकास होता है। हिन्दू समाज में फैली कुरीतियों तथा अंधविश्वास को शिक्षा द्वारा ही दूर किया जा सकता है।

हमारी शिक्षा का लक्ष्य मानवतावाद पर आधारित होना चाहिए। टैगोर ने कहा था कि ईश्वर के सितार के अनेक तार हैं। कुछ लोहे के बने हैं, कुछ ताँबे के और कुछ सोने के। मानवता ईश्वर की वीणा का स्वर्णिम तार है। उन्हीं के शब्दों में देश धर्म, मानव धर्म है; अर्थात् वे मानवता को ही अपना धर्म मानते थे, जिसमें ईश्वर विद्यमान रहता है। वे प्रत्येक मनुष्य को समाज और राष्ट्र के लिए उपयोगी मानते थे। इसलिए मनुष्य-मनुष्य में भेद कदापि नहीं किया जाना चाहिए। उनकी एक कविता का भाव है- वह पुरूष जो खिला न हो, वह नदी जो मरुभूमि में रास्ता बदल चुकी हो, उनका भी कुछ अर्थ होता है?

यही कारण था कि टैगोर मानव की पूर्णता तथा सर्वांगीणता के विकास पर बल देते थे और यह सर्वांगीण विकास शिक्षा के द्वारा ही हो सकता है। इसलिए हमारी शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो विद्यार्थियों का सर्वांगीण विकास कर सकें।

शिक्षा द्वारा ही मनुष्य अनेक प्रकार के आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक बंधनों से छुटकारा पा सकता है। वह शिक्षा द्वारा हृदय, बुद्धि और शरीर की सारी शक्तियों को सम्यक् रूप से विकसित करने के पक्ष में है। शरीर को सभी धर्मों के निर्वाह का माध्यम मानते हुये शारीरिक स्वास्थ्य को सबसे अधिक महत्व देते हैं। संयम और नियम में रहने तथा पौष्टिक भोजन और व्यायाम का जीवन में बहुत महत्व है। शारीरिक शिक्षा के साथ ही चारित्रिक विकास के लिए धर्म और नैतिकता को भी शिक्षा में स्थान मिलना चाहिए।

शिक्षा संस्थाओं में औपचारिक नियमों का कड़ाई से पालन करना ठीक नहीं। इस आधार पर कड़े दण्ड देना भी अनुचित है। यथा समय छात्रों की आवश्यकताओं की पूर्ति कर तथा समस्याओं का समाधान कर उन्हें संतुष्ट किया जा सकता है। असन्तोष ही अनुशासन की समस्या को जन्म देता है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती के अनुसार, समाज में अंधविश्वास और बुराई का विनाश तभी सम्भव है, यदि स्त्रियां सुशिक्षित और गुणवती हों। पुरूष अकेला ही शिक्षित होता है, जबकि स्त्री पूरे परिवार को शिक्षित करती है। अतः स्त्रियों की शिक्षा पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। स्त्रियों को सामान्य ज्ञान के लिये उन्हें धर्म तथा संस्कृति का ज्ञान, शिशुपालन तथा परिवार कल्याण की शिक्षा दी जानी चाहिए। विधि, चिकित्सा, तकनीक तथा व्यवसाय के क्षेत्र में आगे बढ़ने वाली स्त्रियों के लिए उच्च शिक्षा की सुविधाएं भी प्राप्त हों। लड़कियों की शिक्षा के लिए अलग छात्रावास की व्यवस्था होनी चाहिए।

भारत में निरक्षरों की बढती हुई संख्या को देखकर यदि प्रत्येक गांव में पाठशाला खोल दी जाए, तो गरीब बालक वहां शिक्षा प्राप्त कर सकता है। कई बार गांव में पाठशाला नहीं होने से भी बालक दूसरे गांव तथा शहर पढ़ने के लिए नहीं जाते और वे गरीब बच्चे खेतों में काम करने के लिए चले जाते हैं।

जब तक जनशिक्षा का प्रचार नहीं होगा, तब तक करोड़ों लोग भूखे और अज्ञानी बने रहेंगे। जन शिक्षा के कार्य में प्रत्येक व्यक्ति का योगदान होना चाहिए। जनशिक्षा द्वारा ही राष्ट्रीय चरित्र का निर्माण किया जा सकता है। राष्ट्रीय शिक्षा व्यक्ति को उसके समाज देश तथा विश्व के साथ समन्वित कर, उसमें मानवता की भावना का विकास करती है। विश्व के प्रति संवेदन-शीलता उसी की हो सकती है, जो राष्ट्रहित के लिए मन, वचन और कर्म से तत्पर हो। वही सच्चा भारतीय भी कहला सकता है।

वर्तमान काल में शिक्षा को बोझिल न बनाया जाए। आज का विद्यार्थी पहले की अपेक्षा अधिक कठिनाई में है। विद्यालय में प्रवेश के लिए प्रतियोगिताओं, विद्यालय के लिए भारी अनुदान, मोटी फीस आदि के अनेक कठिनाइयाँ उसे उठानी पड़ती है। डिग्रियां प्राप्त कर उन्हें रोजगार के लिए भटकना पड़ रहा है। बिना पहुँच वाला विद्यार्थी योग्य होने पर भी अल्पवेतन पर अपना श्रम बेच रहा है, तो ऐसे में शिक्षा का लक्ष्य यह होना चाहिए कि इस प्रकार के खर्चे बंद किए जायें तथा माता-पिता

पर पढ़ाई के खर्चे का इतना भार नहीं होना चाहिए। आरक्षण आदि को भी बंद किया जाए। आज देश को स्वतंत्र हुये 68 वर्ष हो गए हैं। आरक्षण पद्धति अभी भी चल रही है। ऐसा नहीं होना चाहिए। विद्यार्थियों को अपनी योग्यता के अनुसार विद्यालयों में प्रवेश तथा नौकरी आदि में स्वतत्रंत्र छूट होनी चाहिए।

आज की शिक्षा का लक्ष्य पूर्ण व्यक्तित्व का विकास है। इस बड़े लक्ष्य के अन्तर्गत आत्मानुभूति, चारित्रिक उन्नयन, मानसिक विकास, नागरिक जीवन तथा राष्ट्रीयता के विकास के उद्देश्य सम्मिलित हैं। चरित्र की पवित्रता ही व्यक्तित्व की पूर्णता है। चरित्र एवं नैतिकता आध्यात्मिक लक्ष्य के बीच की कड़ी है। व्यक्ति के चरित्र निर्माण के साथ ही राष्ट्र का चरित्र निर्माण भी शिक्षा का लक्ष्य होना चाहिए। व्यक्ति का मानसिक और सांस्कृतिक विकास भी आवश्यक है।

शिक्षा द्वारा उसमें ऐसी मनःस्थिति जाग्रत कर दी जाए कि उसमें चिन्तन तर्क और विवेक का पर्याप्त विकास हो, जिससे वह स्वयं अच्छे-बुरे, उचित-अनुचित का निर्णय कर सके।

शिक्षा द्वारा व्यक्ति में आदर्श नागरिक के गुणों का विकास आवश्यक है। सभी नागरिकों में दृष्टिकोण की एकरूपता तब तक नहीं आ सकती जब तक कि आधारभूत मूल्य एक न हो। ऐसा कोई गीत नहीं, जिसे वे मिल कर गा न सकें। शिक्षा व्यक्ति का संतुलित विकास है, जहां उसकी योग्यताओं और क्षमताओं का दिग्दर्शन होता है।

शिक्षा केवल कुछ रट लेने या गुप्त बातें जान लेने का नाम नहीं है बल्कि शिक्षा उसे कहते हैं, जो आदमी का विकास करे, जो दिमागी शक्तियाँ लेकर वह पैदा हुआ है, उसका यथासंभव विकास करें। शिक्षा तो मानव मस्तिष्क के पूर्ण परिपोषण का नाम है। शिक्षा का लक्ष्य भारतीय वातावरण के अनुकूल हो तथा युवकों में सच्चाई, सहनशीलता, आत्मानुशासन, सौन्दर्य-बोध, सामाजिक गुणों का विकास करे। शिक्षा द्वारा मानव जीवन में भौतिकता और आध्यात्मिकता के बीच सन्तुलन उत्पन्न कर उसे समाज का उपयोगी सदस्य बनाया जाना चाहिए।

उपसंहार

शिक्षा का वास्तविक लक्ष्य व्यक्ति में मानवीय मूल्यों के प्रति समर्पण की भावना को जन्म देना हैं उच्च चारित्रिक गुणों को विकसित करने, मानवीय गरिमा और दूसरों के प्रति सहिष्णुता की भावना को जन्म देना ही शिक्षा का लक्ष्य है। सत्य पर स्थिर रहना, अन्याय के विरूद्ध संघर्ष और कल्याण के प्रति समर्पित होना ही सच्ची शिक्षा है। वास्तविक शिक्षा मनुष्य को मनुष्य ही बनाये। उसे चोर, डाकू, तस्कर, रिश्वतखोर, व्यभिचारी, जमाखोर, अन्यायी और पापी न बनाये, तभी शिक्षा की सार्थकता है। शिक्षा राष्ट्रीय दृष्टिकोण विकसित करे। अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण विकसित करे और अन्तर्राष्ट्रीय सद्-भाव के बीज बोये। जो 'वसुधैव-कुटुम्बकम्' की भावना जागृत करे, वही सच्ची शिक्षा है। वर्तमान औद्योगिक और प्रतिभोगी विश्व में व्यक्ति को श्रम के प्रति समर्पित शिक्षित और कुशल बनाये, जिससे वह पिछड़े हुए राष्ट्र को उन्नति की ओर ले जाये। राष्ट्र को सबल तथा आत्मनिर्भर बनाये। नागरिकों को सुखी और समृद्ध बनाये। नागरिकों में एकरूपता तब तक नहीं आ सकती, जब तक आधारभूत मूल्य एक न हों। ऐसा कोई गीत न हो जिसे सब मिलकर न गा सकें और ऐसा कोई सुख-दुःख न हो जो सब बांट न सकें। शिक्षा मात्र भौतिक सुखों और उपलब्धियों को जुटाने का साधन ही नहीं अपितु इसके द्वारा व्यक्ति को उसकी सांस्कृतिक धरोहर से लाभान्वित भी कराना है। अन्त में हमारी शिक्षा का यही लक्ष्य होना चाहिए।

'सोये भारत को जगाना है, शिक्षा का दीप जलाना है। जन-जन को शिक्षित करना है/ सबका भाग्य बनाना है।'

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

गुप्ता, एस0पी0 (2006), शिक्षा का ताना-बाना
पाण्डेय, रामशकल (2007), भारतीय शिक्षा का विकास
उपाध्याय, प्रतिभा (2008), शिक्षा में उदीयमान प्रवृत्तियाँ
कल्याण विशेषांक (2008), गीता प्रेस, गोरखपुर
प्रज्ञा (अप्रैल 2015), शांति कुंज हरिद्वार

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) **9,90-94**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 18 जून 2015

श्री अरविन्द के दार्शनिक विचारों का वर्तमान भारतीय शैक्षिक परिदृश्य में प्रासंगिकता का अध्ययन

डॉ. नरेन्द्र कुमार चौरसिया* एवं श्री जय प्रकाश नारायण**

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *श्री अरविन्द के दार्शनिक विचारों का वर्तमान भारतीय शैक्षिक परिदृश्य में प्रासंगिकता का अध्ययन* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखक *नरेन्द्र कुमार चौरसिया एवं जय प्रकाश नारायण* घोषणा करते हैं कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेते हैं, क्योंकि हमने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देते हैं। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह हमारी मौलिक कृति है। हम शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देते हैं। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देते हैं।

भूमिका

प्राचीन काल से ही भारत ऋषियों, विद्वानों, समाज सुधारकों का देश रहा है जिन्होंने अपने विचारों और कार्यों से न केवल भारत का मस्तक ऊँचा किया है बल्कि सत्यं, शिवम्, सुन्दरम् का आदर्श प्रस्तुत कर बसुधैव-कुटुम्बकम् का उपदेश देकर सम्पूर्ण विश्व को उद्दीप्त किया है। आधुनिक काल में भारत की शैक्षिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रगति के लिए जिन महान विभूतियों ने शैक्षिक आन्दोलन प्रारम्भ किया और उसमें योगदान किया, वे भारत भूमि की महानता के साक्षात् प्रमाण हैं। भारतीय शिक्षा के क्षेत्र में विभिन्न शैक्षिक विचारधाराओं का विकास हुआ जिन्होंने राष्ट्रीय शिक्षा-व्यवस्था को प्रभावित किया, जैसे- दयानन्द का आर्य दर्शन, विवेकानन्द का नव्य वेदान्त दर्शन, टैगोर का विश्वबोध दर्शन, गान्धी विनोवा का सर्वोदय दर्शन तथा श्री अरविन्द का सर्वांग योग दर्शन आदि। इन सभी शिक्षा-शास्त्रियों ने अपने दर्शन के आधार पर शिक्षा प्रक्रिया के विभिन्न पहलुओं को प्रभावित किया और उसे एक नई दिशा प्रदान की। टैगोर, गान्धी, दयानन्द, विवेकानन्द तथा श्री अरविन्द के शैक्षिक चिन्तन और प्रयोगों का प्रभाव आज भारतीय शिक्षा में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।

श्री अरविन्द प्रचलित शिक्षा प्रणाली से असन्तुष्ट थे। उनका कहना था कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय शिक्षा की रूपरेखा में परिवर्तन तो अवश्य हुआ पर वह पर्याप्त नहीं है। सूचनाओं का संग्रह मात्र ही शिक्षा नहीं है। बल्कि शिक्षा बालकों के मस्तिष्क, आत्मा, चरित्र एवं राष्ट्र की आवश्यकताओं के अनुरूप होनी चाहिए। शिक्षा को वर्तमान एवं भविष्य की आवश्यताओं के अनुसार होना चाहिए जो बालक की आंतरिक शक्तियों का विकास करे। दूसरे शब्दों में वे ऐसी शिक्षा व्यवस्था चाहते थे जो बालकों को एक कुशल नागरिक बनाये तथा आधुनिक युग की आवश्यकताओं को पूरा करने में समर्थ हो। इस प्रकार

* प्रधानाचार्य, जनप्रिय औ. इं. कॉलेज [असधना] कानपुर नगर (उत्तर प्रदेश) भारत
** प्रधानाचार्य, पी. सी. पी. एम. इं. कॉलेज दरियापुर [घीघा] फतेहपुर (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

श्री अरविन्द ने शिक्षा को अत्यन्त व्यापक और गतिशील रूप प्रदान किया है उनके अनुसार-सच्ची शिक्षा को मशीन से बना हुआ सूत नहीं होना चाहिए, अपितु इसको मानव के मस्तिष्क तथा आत्मा की शक्तियों का निर्माण अथवा जीवित उत्कर्ष करना चाहिए। शिक्षा के क्षेत्र में श्री अरविन्द ने केवल अपने बहुमूल्य विचारों का ही नहीं, वरन व्यावहारिक योगदान भी दिया है। उन्होंने वर्तमान उद्देश्य विहीन शिक्षा को अपने उद्देश्यों और शिक्षण विधियों के माध्यम से जो मार्गदर्शन किया है। वह महान योगदान कहा जा सकता है। उनके विचारों का साकार रूप है, अरविन्द आश्रम।

1910 ई0 में श्री अरविन्द ने फ्रेन्च उप-निवेश पाण्डिचेरी में आश्रम की स्थापना की जिसे लोगों ने उनके मना करने के बाद भी ''अरविन्द आश्रम'' का नाम दिया। श्री अरविन्द आश्रम, भारतीय शिक्षा में एक उत्तम परीक्षण के साथ ही साथ जीवन के रहन-सहन की विधि का एक प्रयोग भी है। इस आश्रम का उद्देश्य कोई सुनियोजित शिक्षा प्रदान करना नहीं, वरन् अध्ययन, चिन्तन और मनन के द्वारा संसार के कल्याण के लिए कार्यक्रम निर्धारित करना था। आरम्भ में इस आश्रम में आश्रमवासियों की संख्या केवल आठ थी किन्तु 1920 में एक फ्रान्सीसी महिला मीरा रिचर्ड (दि मदर) के आकर बस जाने से और उनके अथक प्रयास से यह संख्या बढ़कर लगभग 800 तक पहुँच गई है। इस आश्रम में प्रवेश के लिए जाति, धर्म, लिंग, सम्प्रदाय, राष्ट्रीयता आदि का भेदभाव नहीं है। आश्रम का उद्देश्य मानवीय प्रेम का विकास करना है। इसलिए संसार की समस्त संस्कृतियों का यह संगम है। श्री अरविन्द ने आश्रमवासियों के बच्चों के लिए 1943 में एक स्कूल की स्थापना की जिसमें गणित, विज्ञान, भूगोल, इतिहास आदि भौतिक विषयों के अतिरिक्त अंग्रेजी, फ्रेन्च, जर्मन संस्कृत आदि भाषाओं के अध्ययन की सुविधा है। स्कूल के शिक्षक आश्रमवासी साधक हैं। उन्हें किसी प्रकार का वेतन नहीं दिया जाता बल्कि उनके परिवार की सभी आवश्यकताओं को आश्रम द्वारा पूरा किया जाता है। 1952 में श्री अरविन्द अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय केन्द्र की स्थापना की गयी। यह विश्वविद्यालय आश्रम स्कूल का विकसित रूप है। श्री अरविन्द विश्वविद्यालय केन्द्र में शिशु की शिक्षा से लेकर अनुसंधान कार्य तक की व्यवस्था है। इस समय लगभग 15 देशों के छात्र यहाँ पर शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। इसमें अपनी गोशाला है। गृह निर्माण विभाग, बिजली विभाग, सफाई विभाग का कार्य आश्रमवासी स्वयं करते हैं आश्रम का स्वयं का प्रेस है। प्रेस के लिए कागज भी यहीं पर बनाया जाता है। इस तरह से आश्रम आत्मनिर्भर है। अरविन्द द्वारा प्रतिपादित सर्वांग शिक्षा (Inteqral Education) के सिद्धान्तों का यहाँ अनुसरण किया जाता है। आश्रम में किसी धर्म विशेष की शिक्षा नहीं दी जाती पर सारा वातावरण आध्यात्मिकता से ओत-प्रोत है। सम्पूर्ण शिक्षा निःशुल्क है।

श्री अरविन्द का सर्वांग दर्शन

श्री अरविन्द आदर्शवादी थे एवं उपनिषदों के दर्शन के समकक्ष थे। उन्होंने जीवन में आध्यात्मिक साधना, योग एवं ब्रह्मचर्य को अधिक महत्व दिया। वे विकास के सिद्धान्त पर विश्वास करते थे। विकास का लक्ष्य संसार में व्याप्त दिव्यशक्ति का बोध प्राप्त करना है। विश्व में विकासशील प्राणियों का एक ही लक्ष्य है, वह है पूर्ण और अखण्ड चेतना की प्राप्ति। मानव इस चेतना की प्राप्ति के उपरान्त अपना विकास करता हुआ अन्तिम मानसिक स्तर को प्राप्त करता है और स्वयं अतिमानव बन जाता है। इस स्तर पर पहुंच कर वह सुख और शान्ति का अनुभव करता है तथा उसे संसार में व्याप्त सत्ता का बोध हो जाता है। श्री अरविन्द के अनुसार मानवता, विश्वात्मा एवं परमात्मा तीनों ही परम् सत्य है। श्री अरविन्द समस्त जीवन को योग मानते हैं। मनुष्य और विश्व दोनों की उत्पत्ति समान रूप से हुयी है। दोनों सत्य और वास्तविक हैं। मनुष्य और प्रकृति दोनों में योग सिद्धान्त उपलब्ध है। साधक को इस प्रकार के योग प्रयत्न में कई स्तरों को पार करना पड़ता है। सर्वप्रथम प्रक्रिया आन्तरिक अनुभूति है जो वाह्य क्रिया को नियंत्रित करके सम्भव होती है। इसके उपरान्त आत्मा को शुद्ध करके ऊपर की ओर उठना होता है जो सद्वृत्तियों को ग्रहण करने से होता है। इसके लिए उन्होंने प्रेम, शक्ति, आत्म समर्पण, विवेक एवं कर्म करना आवश्यक माना हैं। योग संसार के बाहर नहीं है वरन् संसार में रहकर कर्म करने में है तभी दैवीय जीवन (Divine-Life) की अनुभूति होती है और पूर्ण योग ही मुक्ति है।

अध्ययन की आवश्यकता

आज भारतीय शिक्षा दिशाविहीन है। एक तरफ भारतीय समाज पर पश्चिमी ज्ञान का दबाव है जिसके कारण मूल्य, आदर्श तथा भावनाओं को कोई महत्व नहीं है। दूसरी तरफ समाज का एक ऐसा वर्ग है जो प्राचीन भारतीय ज्ञान, विज्ञान का पक्षधर है। समाज का तीसरा वर्ग जो बहुसंख्या में है वह जीवन की आवश्यकता अर्थात् ठाटबाट, शान शौकत, साक्षरता तथा रोजगार आदि की तरफ अपनी दृष्टि लगाये हुए है। इसी सबसे आज अशिक्षा द्वारा नवयुवकों में अराजकता की स्थिति उत्पन्न हो गई है। इस तरह आज हम विकल्पों के चौराहे पर खड़े हैं। इन दिनों हमने अपने परम्परागत मूल्यों, आदर्शों तथा अपनी प्राचीनतम् परन्तु वैभवशाली संस्कृति की ओर ध्यान नहीं दिया है। आज शिक्षा में पुनर्रचना की आवश्यकता है। शिक्षा के नीति नियामक को इस तथ्य से अवगत होना होगा कि शिक्षा व्यवसाय बिना स्वस्थ शैक्षिक सिद्धान्त तथा भारतीय शिक्षा के महान विचारकों के बिना अधूरा रहेगा। अनुसंधानकर्ता भारतीय शिक्षा व्यवस्था में श्री अरविन्द के शिक्षा दर्शन की आवश्यकता अनुभव करता है। यही नहीं श्री अरविन्द ने शिक्षा में जो प्रयोग किए हैं वे आज की शिक्षा के लिए बहुत ही प्रासंगिक हैं। अतः उनके दार्शनिक विचारों का आलोचनात्मक अध्ययन करके भारतीय शिक्षा व्यवस्था में व्यवहृत करने की आवश्यकता है। विशेषकर शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यचर्या के प्रकार, शिक्षक की भूमिका, शिक्षार्थी के प्रति व्यवहार, मूल्यांकन पद्धति, शिक्षण पद्धति, जीवन के मूल्य, अनुशासन तथा चरित्र। इन सभी समस्याओं के समाधान के लिए एक ठोस दार्शनिक आधार की आवश्यकता है। दार्शनिक चिन्तन जितना ही यथार्थ होगा, वह उतना ही अधिक पूर्ण और सन्तुलित शिक्षा का सूत्रपात करेगा। भारतीय और पाश्चात्य दार्शनिकों के मध्य एक ऐसा दार्शनिक जो सर्वाधिक सन्तुलित दर्शन दे सका हो, की खोज करके और उसके शिक्षा दर्शन का अध्ययन करके भारतीय शिक्षा जगत में व्याप्त द्वन्दों में सन्तुलन स्थापित करने हेतु शोधकर्ता को सर्वाधिक सर्वांगपूर्ण भारतीय दार्शनिक श्री अरविन्द के दार्शनिक विचारों पर अध्ययन करने की प्रेरणा प्रदान की। इसी विचार ने शोधकर्ता को ''श्री अरविन्द के दार्शनिक विचारों का वर्तमान-भारतीय शैक्षिक-परिदृश्य में प्रासंगिकता का अध्ययन'' के लिए प्रेरित किया। श्री अरविन्द के सर्वांग दर्शन पर आधारित भारतीय शिक्षा व्यवस्था निश्चय ही आज के लिए प्रासंगिक होगी।

सम्बन्धित साहित्य का सर्वेक्षण

श्री अरविन्द पर जिन विद्वानों ने शोध किए वे इस प्रकार हैं :

1. चन्द्र, एस0एस0; एजूकेशनल फिलासफी आफ श्री अरविन्द, पी-एच0डी0 शिक्षा शास्त्र मेरठ विश्वविद्यालय; 1984

इस अध्ययन का उद्देश्य श्री अरविन्द के मौलिक/ आधारभूत दर्शन का अध्ययन करना साथ ही समकालीन पाश्चात्य एवं भारतीय शिक्षा दार्शनिकों के दार्शनिक विचारों से तुलना करना। इस अध्ययन का लक्ष्य - (1) श्री अरविन्द के शिक्षा दर्शन की व्यवस्थित रूपरेखा प्रस्तुत करना। (2) श्री अरविन्द के दर्शन के गूढ़ तत्वों का रहस्योद्घाटन करना। (3) श्री अरविन्द का शिक्षा दर्शन व्यक्तित्व निर्माण तथा संगठित चरित्र के निर्माण में कितना सहायक होगा का मूल्यांकन करना। अनुसंधानकर्ता ने निष्कर्ष निकाला कि भारत में पुनर्जागरण का श्रेय श्री अरविन्द के शैक्षिक आदर्श तथा आचरण की शिक्षा को जाता है। श्री अरविन्द ने शिक्षा का लक्ष्य बालक की सुषुप्त शक्तियों का विकास करना तथा व्यक्तिवाद और समाजवाद की संकीर्ण सीमा से बालक को निकालकर मानवतावादी एवं समग्रवादी बनाना है। श्री अरविन्द ने शारीरिक विकास एवं ज्ञानेन्द्रियों का प्रशिक्षण, मानसिक विकास, नैतिक विकास, आध्यात्मिक विकास तथा विशिष्ट क्षमताओं के विकास को शिक्षा का लक्ष्य बनाया। श्री अरविन्द का सर्वांग योग दर्शन मानव जाति के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। श्री अरविन्द समस्त जीवन को योग मानते हैं। मनुष्य और प्रकृति दोनों में योग सिद्धान्त उपलब्ध है। अनुसंधानकर्ता ने ऐतिहासिक पद्धति का प्रयोग किया है जिसमें प्राथमिक तथा द्वितीयक स्रोतों से उपयोगी तथ्य संग्रहीत किए हैं।

2. देवी, एस0ए0, क्रिटिकल स्टडी आफ दि कान्सेप्ट आफ क्रिएटिविटी इन फिलासफी विद स्पेशल रिफरेनस टु बर्गसन ह्वाइटहेड एण्ड श्री अरविन्द, पी-एच0डी0, फिलासफी कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय; 1976

इस अनुसंधान में दार्शनिक ऐतिहासिक तथा तुलनात्मक पद्धति का उपयोग किया गया है। अनुसंधानकर्ता ने निष्कर्ष निकाला कि साधारण सर्जनशील व्यक्ति सामान्य रूचि-कार्यों तक सीमित रह जाते हैं जो आत्मसुख, स्व-सन्तुष्टि और संकीर्ण क्षेत्र को प्रभावित करना मात्र अपना लक्ष्य समझते हैं। निम्न और सामान्य सर्जनशील व्यक्ति स्व के लिए होते हैं, पर के लिए नहीं। उनमें समय-समय पर उचित मार्ग निर्देशन देकर बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय हेतु प्रेरित किया जा सकता है, परन्तु उच्च सर्जनशीलता वाले व्यक्ति अपने अद्वितीय विचारों और कार्यों के द्वारा, देश, काल समाज एवं विश्व को लाभान्वित करने में अपने जीवन को सार्थक समझते हैं। जहाँ तक सर्जनशीलता की प्रक्रिया का प्रश्न है-

बर्गसन, श्री अरविन्द तथा ह्वाइटहेड एक दूसरे के अत्यनत निकटस्थ रहे हैं। इन विद्वानों का मत है कि मनुष्य का भविष्य दो सर्जनशील अभिकरणों पर अवलम्बित है। प्रथमतः उसका प्राशिशास्त्रीय उद्विकास तथा दूसरा उसका मनोवैज्ञानिक उद्विकास। वंशानुगत तथा प्राकृतिक वातावरणीय शक्ति मनुष्य के विकास को निरन्तर प्रभावित करते हैं। मनुष्य का भविष्य सत्य के प्रति उसकी सूझ तथा दृष्टिकोण पर निर्भर करता है। मानसिक विकास के लिए यम, नियम, आसन और प्राणायाम की आवश्यकता है।

3. पटेल, सी0पी0; स्टडी आफ दि साइकोलाजिकल फाउन्डेशन आफ दि ''फ्री प्राग्रेस सिस्टम एज इवाल्वड इन श्री अरविन्द इण्टरनेशनल सेन्टर आफ एजूकेशन'' पी-एच0डी0 मनोविज्ञान सागर विश्वविद्यालय; 1983

अनुसंधानकर्ता ने इस अनुसंधान में सर्वेक्षण पद्धति को प्रयुक्त किया जिसमें स्व-निर्मित प्रश्नावली का निर्माण करके उसकी विश्वसनीयता तथा वैधता का परीक्षण किया। अनुसंधानकर्ता ने निष्कर्ष निकाला कि- अरविन्द का सर्वांग शिक्षा सिद्धान्त बालकों के विकास में मील का पत्थर है। उनकी धारणा थी कि जीवन में ज्ञान सदा सुषुप्तावस्था में विद्यमान रहता है शिक्षा का आधार अन्तःकरण है। उनके अनुसार मनुष्य के अन्तःकरण के चार पटल होते हैं। चित्त, मानस, बुद्धि तथा ज्ञान। इन चारों पटलों का विकास होना चाहिए।

4. राघवन, जे0ए0 क्रिटिकल स्टडी आफ श्री अरविन्दाज कन्ट्रीब्यूसन टु बिल्डिंग आफ मार्डन इण्डियन फिलासफी आफ एजूकेशन, पी-एच0डी0 शिक्षाशास्त्र, नागपुर विश्वविद्यालय; 1984

अध्ययन का निष्कर्ष : श्री अरविन्द के आध्यात्मिकता के उद्विकास का सिद्धान्त तथा सर्वांगज्ञान के सिद्धान्त का प्रतिफल उनका शिक्षा दर्शन है। उनके अनुसार जीवन और जगत दोनों सत्य हैं और सभी का समन्वित विकास होना जीवन का उद्देश्य है जिसमें तन, मन और आत्मा सभी सत्य हैं और सभी का समन्वित विकास होना चाहिए। अरविन्द का विकासवाद ही उनके दर्शन का मूलाधार है। दिव्य जीवन में आरोहण ही मानव की यात्रा है। सभी कार्यों से मुख्य कार्य हैं- गृहणीय बलिदान। उनके विचार से विकास की दो दशाएँ होती हैं- आरोहण एवं अवरोहण, जो अन्य दर्शनों में नहीं मिलती।

5. शर्मा; आर0एस0; ह्यूमनिस्म इन दि इजूकेशनल फिलासफी आफ श्री अरविन्द पी-एच0डी0 शिक्षा शास्त्र मेरठ विश्वविद्यालय; 1983

(श्री अरविन्द के शिक्षा दर्शन में मानवतावाद) इस अध्ययन में दार्शनिक पद्धति का प्रयोग किया गया है। इस अध्ययन में अरविन्द के शिक्षा दर्शन की तुलना मानवतावाद के शिक्षा दर्शन से की गई है। अनुसंधान का निष्कर्ष - (1) श्री अरविन्द के अनुसार विकास या उद्विकास का श्री गणेश सूक्ष्म तत्व से एक व्यक्ति से बहुसंख्य व्यक्ति में होता है। इसका क्षेत्र सूक्ष्म से प्रारम्भ होकर अनन्त तक या लघु से दीर्घ होता है। (2) श्री अरविन्द का शिक्षादर्शन प्रकृत्या मानवतावादी है। उन्होंने सर्वांग शिक्षा द्वारा मानव समाज के विकास का प्रारूप प्रकल्पित किया है। इस प्रकल्पना से मानव तथा समाज का सर्वांगीण विकास सम्भव होगा। (3) व्यक्ति का मानस विकास उसके शारीरिक तथा मानसिक विकास पर निर्भर करता है। (4) बालक की शिक्षा उसकी प्रकृति तथा योग्यता के अनुरूप होनी चाहिए ऐसा प्रयोग श्री अरविन्द ने अपनी शिक्षा संस्था में किया। (5) सर्वांग शिक्षा तथा सर्वांग योग श्री अरविन्द के महान योगदान है।

6. सिंह, एस0पी0; दि एजूकेशनल डाक्ट्रिन्स आफ प्लेटो एण्ड अरविन्दोः ए कम्परेटिव स्टडी, पी-एच0डी0 शिक्षाशास्त्र अवध विश्वविद्यालय 1983

श्री सिंह ने अपने तुलनात्मक अध्ययन में निष्कर्ष निकाला :

(1) दोनों दार्शनिक शिक्षा द्वारा मानव प्राणी तथा समाज की वर्तमान स्थिति में परिवर्तन चाहते थे दोनों ही इस सम्बन्ध में आशावादी (सकारात्मक नजरिया) दृष्टिकोण रखते थे।

(2) दोनों दार्शनिक स्वानुभूति तथा पूर्णता की प्राप्ति शिक्षा द्वारा चाहते थे। इस प्रकार एक ही बिन्दु पर दोनों दार्शनिकों के दृष्टिकोण पर प्रकाश डालते हुए अनुसंधानकर्ता ने उद्घाटित किया है कि आधुनिक शिक्षा के विकास में प्लेटो तथा अरविन्द के दार्शनिक विचार आज के युग की मांग को पूरा करते हैं तथा सभी समस्याओं का हल प्रस्तुत करते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ

राजपूत, जे0एस0 (ED इड)- श्री अरविन्द आन एजूकेशन (मानोग्राफ) एन0सी0टी0ई0 नई दिल्ली

रानाडे स्रद्धालु- इन्ट्रोडक्शन टु इन्टीगूल इजूकेशन, श्री अरविन्द इन्टरनेशनल इन्स्टीट्यूट आफ इजूकेशनल रिसर्च अरोविल

आयंगर, श्री निवास- श्री अरविन्दो, आर्य पब्लिशिंग हाउस, कलकता-1945

डा0 इन्द्रसेन- इंटैगरल एजुकेशन

नागर, डा0 पुरूषोत्तम- आधुनिक भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन

भट्ट महादेव- अरविन्द महिमा

वर्मा, डा0 वैद्यनाथ प्रसाद- विश्व के महान शिक्षाशास्त्री

शर्मा, डा0 उर्मिला- समकालीन भारतीय राजनैतिक चिन्तन में मानवतावाद
डा0 शर्मा, रामनाथ- राष्ट्रधर्म द्रष्टा श्री अरविन्द
डा0 शर्मा, रामनाथ- ''विचार दर्शन श्री अरविन्द''
शर्मा, डा0 श्याम बहादुर- विचार दर्शन श्री अरविन्द
त्रिपाठी, चन्द्रदीप (अनुवादक)- श्री अरविन्द के पत्र
श्री अरविन्द- एसेज आन दी गीता
श्री अरविन्द- ए नेशनल सिस्टम आफ एजुकेशन
श्री अरविन्द- दि आइडियल आफ ह्यूमिनिटी
श्री अरविन्द- दि फाउण्डेशन आफ इण्डियन कल्चर
श्री अरविन्द- दि ब्रेन आफ इण्डिया
श्री अरविन्द- दि रिडिल आफ दि वर्ल्ड
श्री अरविन्द- दि सिथिसिस आफ योगा
श्री अरविन्द- दि सुपर मेन
श्री अरविन्द- दिव्य जीवन
श्री अरविन्द- भारत में पुनर्जागरण
श्री अरविन्द- मन्दिर एन्यूवल 1947
श्री अरविन्द- विचार दर्शन
श्री अरविन्द- वन्देमातरम्
श्री अरविन्द- शिक्षा
श्री अरविन्द- नवजात - नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया, नई दिल्ली।

www.education.nic.in
www.sriaurobindoinstitute.org.

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2015) **9,95-98**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 21 जून 2015

कचरे का प्रबंधन जरूरी है

प्रो. अंजली श्रीवास्तव*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *कचरे का प्रबंधन जरूरी है* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *अंजली श्रीवास्तव* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

सारांश

आज मनुष्य ने इतनी प्रगति कर ली है कि पृथ्वी से बहुत दूर विश्व ब्रह्मांड में भी उसका आवागमन होने लगा है लेकिन धरती पर जीवन की संभावना पर प्रश्न चिन्ह सा लगता जा रहा है। आज उद्योग, यातायात, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि जीवन के हर क्षेत्र में हम आधुनिक तकनीक से लाभान्वित हो रहे हैं और उनके प्रयोग करने के फलस्वरुप हमारी सुविधाओं में वृद्धि तो हो रही है, पर उसके साथ ही हमारी समस्याएं भी बढ़ रही हैं। जीवन के विस्तार और संकीर्णता की गाथा साथ-साथ चल रहीं हैं। भौतिकता और उपभोक्ता वाद को अपनाना आज का आदर्श बन गया है। अंधाधुंध विकास की इस दौड़ में स्वार्थ हावी हो गया है और संतुलन खो गया है।

प्रदूषित मिट्टी, रसायनिक कचड़ा, इलेक्ट्रॉनिक कबाड़-ग्रीन क्रास फाउन्डेशन की प्रदूषित पर्यावरण पर रिपोर्ट कहती है कि 20 करोड़ लोग सीधे तौर पर प्रदूषित पर्यावरण में जीने को मजबूर हैं। भारी धातुओं से दूषित मिट्टी, हवा में घुलने वाले रसायनिक कचरे या फिर नदी के पानी में इलक्ट्रॉनिक कबाड़ का बहा देना खतरे की घंटी बजाने वाले ये कुछ खतरनाक उदाहरण हैं जिन्हे ग्रीन क्रॉस फाउन्डेशन की रिपोर्ट में बताया गया है।

ठोस कचरा प्रायः घरों, मवेशी गृहों, उद्योगों, कृषि एवं दूसरे स्थानों से भी आता है। इसके ढेर टीलों का रुप ले लेते हैं क्योंकि इस ठोस कचरे में राख, कांच, फल तथा सब्जियों के छिलके, कागज, कपड़े, प्लास्टिक, रबर, चमड़ा, ईंट, रेत, धातुएं, मवेशी गृह का कचरा, यूज एंड थ्रो के पैन, रेजर, दूध की बोतल, थैलियां, डिस्पोजेबल बरतन आदि वस्तुएं सम्मिलित होती हैं। हवा में छोड़े गये खतरनाक रसायन, सल्फर, सीसा के यौगिक जब मृदा में पहुंचते हैं तो यह प्रदूषित हो जाती है। नेशनल इनवायरमेंट इंजीनियरिंग रिसर्च इन्स्टीट्यूट, नागपुर की रिपोर्ट के अनुसार देश में हर साल 44 लाख टन कचरा निकल रहा है। इसमें आधे से अधिक कागज, लकड़ी या गत्ता होता है, जबकि 22 फीसदी कूड़ा-कबाड़ा व घरेलू गंदगी होती है।

* सहायक प्राध्यापिका, अर्थशास्त्र विभाग, शासकीय महाराजा महाविद्यालय [सागर विश्वविद्यालय से सम्बद्ध] छतरपुर (मध्य प्रदेश) भारत। (सदस्य सम्पादक मण्डल)

© लेखक 2015, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

राजधानी दिल्ली का ही 57 फीसदी कूड़ा प्रत्यक्ष या परोक्ष रुप से यमुना में बहा दिया जाता है, इस कचरे के कारण ही आज यमुना नदी प्रदूषित हो गयी है। अस्पतालों से निकलने वाला कचरा यानि बायो मेडिकल वेस्ट लोगों की जिंदगी में जहर की तरह घुलकर उन्हें बीमार बना रहा है। वर्तमान में करीब हर माह प्राइवेट और सरकारी अस्पतालों से तीन टन कचरा निकलता है। हाथों-हाथ इसके निस्तारण की सुविधा न होने से अस्पतालों का कचरा वायू प्रदूषण के जरिये हमें बीमार बना रहा है।

ई-वेस्ट आइ. टी. कम्पनियों से निकलने वाला वह कबाड़ा है, जो तकनीक में आ रहे परिवर्तनों और स्टाइल के कारण निकलता है। पहले बड़े आकार के कम्प्यूटर, मॉनीटर आते थे, जिनका स्थान स्लिम स्क्रीन वाले छोटे मॉनीटरों ने ले लिया। माउस, की-बोर्ड, मोबाइल, टेलीविजन, इलेक्ट्रानिक खिलौने या अन्य उपकरण जो चलन से बाहर हो गये, वे ई-वेस्ट की श्रेणी में आ जाते हैं। एक कम्प्यूटर का वजन लगभग 3.15 किग्रा होता है। इसमें 1.90 किलोग्राम लेड और 0.693 ग्राम पारा और 0.04936 ग्राम आर्सेनिक होता है, शेष हिस्सा प्लास्टिक होता है। इनमें से अधिकांश सामग्री गलती-सड़ती नही है और जमीन के सम्पर्क में आकर मिट्टी की गुणवत्ता को प्रभावित करने और भू-गर्भीय जल को जहरीला बनाने का काम करती है। ठीक इसी तरह का जहर बेकार हो गई बैटरियों और मोबाइल से भी उपज रहा है।

विकासशील देशों को सर्वाधिक सुरक्षित डंपिग ग्राउंड माने जाने के कारण भारत, चीन और पाकिस्तान सरीखे एशियाई देश ऐसे कचरे के बढ़ते आयात से चिंतित हैं। ऐसे कचरे के आयात पर प्रतिबंध लगाने के लिए भारत में 14 वर्ष पहले कचरा प्रबंधन और निगरानी कानून 1989 को धता बताकर औद्योगिक घरानों ने इसका आयात जारी रखा है। अमेरिका, जापान, चीन और ताइवान सरीखे देश तकनीकी उपकरणों में फैक्स, मोबाइल, फोटोकॉपियर, कम्प्यूटर, लैपटाप, टी.वी. कंडेसर, सी.डी. माइक्रोचिप्स आदि के कबाड़ होते ही इन्हें ये दक्षिण पूर्व एशिया के जिन कुछ देशों में ठिकाने लगाते हैं, उनमें भारत का नाम सबसे ऊपर है। भारत सहित अन्य कई देशों में हजारों की संख्या में महिला, पुरुष व बच्चे इलेक्ट्रोनिक कचरे के निपटान में लगे हैं। इस कचरे को आग में जलाकर इसमें से आवश्यक धातु भी निकाली जाती है। इसे जलाने के दौरान जहरीला धुआं भी निकलता है जो कि काफी घातक होता है। भारत में सूचना प्रौद्योगिकी का क्षेत्र बंगलोर है। यहां करीब 1700 आई. टी. कंपनियां काम कर रही हैं और उनसे हर साल 6000 से 8000 टन इलेक्ट्रोनिक कचरा निकलता है। इलेक्ट्रोनिक चीजों को बनाने के उपयोग में आने वाली सामग्रियों में ज्यादातर कैडमियम, निकेल, क्रोमियम, एंटीमोनी, आर्सेनिक, बेरिलियम और मरकरी का इस्तेमाल किया जाता है। ये सभी पर्यावरण और स्वास्थ्य के लिए घातक हैं। इनमे से काफी चीजें तो रिसाइकल करने वाली कंपनियां ले जाती हैं, लेकिन कुछ चीजें नगर निगम के कचरे में चली जाती हैं। वे हवा, मिट्टी और भूमिगत जल में मिलकर जहर का काम करती हैं। कैडमियम के धुएं और धूल कारण फेफड़े व किडनी दोनो को गंभीर नुकसान पहुंचता है।

आधुनिक जीवन में प्लास्टिक अनिवार्य अंग बन गया है। कार, कम्प्यूटर, शिशु बोतलें, टेलीफोन आदि में इसका हर जगह उपयोग होता है। प्लास्टिक अपने उत्पादन से लेकर फेंके जाने तक सभी अवस्थाओं में पर्यावरण और समूचे पारिस्थितिक तंत्र के लिए खतरनाक है। इसका निर्माण पैट्रोलियम से प्राप्त रसायनो से होता है। अतः पर्यावरणविदों की मान्यता है कि यह उत्पादन अवस्था में ही ऊर्जा के पारंपरिक ऐसे स्त्रोत का क्षय करता है जो प्राकृतिक नियमानुसार फिर से प्राप्त हो जाते हैं। इससे निकली हुई जहरीली गैस स्वास्थ्य के लिए खतरा है। इसके उत्पादन के दौरान व्यर्थ पदार्थ निकलकर जल स्त्रोतों में मिलकर जल प्रदूषण को जन्म देते हैं। प्लास्टिक बैग्स की समस्या बहुत गंभीर है। प्लास्टिक की थैलियों को गुटकने से सैकड़ों गायों की मृत्यु हो चुकी है। इसकी रिसाइकिलिंग आसानी से संभव नही है और इसको जलाया जाये तो जहरीली गैस निकलती है। दिल्ली में दो वर्ष पहले प्लास्टिक थैलियों पर रोक लगाई जा चुकी है लेकिन आज भी प्रतिदिन 583 मीट्रिक टन कचरा प्लास्टिक का ही होता है।

प्लास्टिक कचरा बहुत समय से गंभीर संकटों को चुनौती देता आया है लेकिन अब इसके लिए भी समाधान मिल गया है। भारत की नवरत्न कंपनियों में शामिल गेल इंडिया प्लास्टिक से तेल बनाने की तैयारी कर रही है। आई आई पी के मुताबिक 100 किलो प्लास्टिक के कचरे से 70 लीटर पैट्रोल, 85 लीटर डीजल और 50 किलो एल पी जी बनायी जा सकती है। इसके लिए जल्द ही पायलट प्लांट दिल्ली या देहरादून में स्थापित किया जायेगा। कचरा प्लास्टिक को ऊर्जा उत्पादन स्त्रोत के रुप में प्रयोग किया जाये तो भविष्य के ईंधन का विकल्प भी हो सकता है। 1992 में पश्चिम यूरोप में 16 प्रतिशत प्लास्टिक

कचरे से ऊर्जा उत्पादन किया गया। जापान के प्लास्टिक वेस्ट प्रबंधन संस्थान द्वारा चलाए जा रहे शोध से मालूम हुआ है कि इसके क्योटो स्थित केन्द्र में प्रति एक टन प्लास्टिक से ऊर्जा क्षमता में 17 प्रतिशत वृद्धि हुई है।

साइंस एंड टेक्नोलॉजी इंजीनियर्स ने अब इस 'पॉलीथीन-प्लास्टिक' के कबाड़ को कंचन बना दिया है, अब देश-दुनिया में इसके कचरे व कबाड़ का बेहतर उपयोग हो रहा है। विशेषज्ञों ने इस 'पॉलीथीन-प्लास्टिक' का अपेक्षित उपयोग कर करीब एक दशक के दौरान बेंगलूर सहित कई इलाकों में दो हजार किलोमीटर लम्बी सड़कों का जाल बिछा दिया है। इसमें खास बात यह है कि बेकार पॉलीथीन प्लास्टिक से बनी इन सड़कों का रख-रखाव खर्च न्यूनतम हो गया है। विशेषज्ञों के अनुसार देश में 'पॉलीथीन-प्लास्टिक' का उत्पादन करने वाले बड़े उद्योंगों की संख्या पच्चीस हजार से अधिक है। इनमें बड़ी तादाद में बोतलों का उत्पादन होता है। विशेषज्ञों के अनुसार प्लास्टिक बोतलें नष्ट होने में सैकड़ों वर्ष लग जाते हैं लेकिन अब इनका बेहतर उपयोग सड़क बनाने में हो रहा है।

मैक्सिको हो या अफ्रीका, ये देश अब मकान बनाने में भी प्लास्टिक बोतलों का उपयोग बेहतर ढंग से कर रहे हैं। मैक्सिको की क्वाड्रो इको साल्यूशंस कंपनी के विशेषज्ञ प्लास्टिक की प्लेट्स बना रहे हैं। इसका उपयोग घर बनाने के लिए किया जा रहा है। बीस वर्गमीटर का घर बनाने में करीब डेढ़ टन प्लास्टिक का उपयोग होता है। नाइजीरिया में तो कबाड़ प्लास्टिक को पिघलाया ही नहीं जाता, वरन वहां प्लास्टिक बोतलों को घर बनाने में सीधे ही उपयोग किया जाता है। बोतलों में बालू या मिट्टी भरकर नॉयलॉन की रस्सी से एक दूसरे को बांध दिया जाता है। बाद में इसे गारे से जोड़ दिया जाता है। इन घरों को भू-कम्परोधी भी माना जाता है। स्पेन के एक इंजीनियर एन्टोनियो इवानेज अल्वा ने कुदरती पेड़ों के संभावित विकल्प के रुप में प्लास्टिक के पेड़ों को विकसित किया है। पोलीयूरेथेन से बने ये कृत्रिम पेड़ रात में अपनी सतह पर जमा होने वाली ओस को सोखते हैं और दिन में धीरे-धीरे हवा में मुक्त करते हैं। इस प्रक्रिया से आस-पास का तापमान कम हो जाता है। तापक्रम में यही कमी वर्षा को प्रेरित करती है। देखने में ये पेड़ ताड़ के समान होते हैं। प्लास्टिक के पेड़ों की यह विशेषता है कि उनके रख-रखाव पर कुछ खर्च नही करना पड़ता।

कबाड़ की उपयोगिता को समझते हुए देश-दुनिया में नित नये शोध हो रहे हैं, कूड़ा भी आज अपनी उपयोगिता सिद्ध कर रहा है। जैविक पदार्थ सब्जी, फल, भोजन का कचरा सड़ने के बाद धूल-मिट्टी में मिलकर जैविक खाद का रुप ले लेता है। खंडवा शहर में रोज तीन टन कचरा निकल रहा है। खंडवा साई संस्था ने ट्रेचिंग ग्राउन्ड पर जैविक खाद बनाने का काम शुरु किया है, मशीनों की टेस्टिंग में ही 10 किलो से ज्यादा खाद बन गयी। इसी तरह मध्य प्रदेश के आदिवासी बहुल झाबुआ जिले के विकासखंड थान्दला में कचरे को कम्पोस्ट खाद में बदलने का काम सफलता पूर्वक किया गया। ट्रेचिंग ग्राउंड पर बने गड्ढों में शहर का कचरा डाला जाने लगा, एक ही गड्ढे से 600 किलो खाद तैयार हो गयी। अजैविक कूड़े-कचरे का उपयोग ईंट व टाइल्स बनाने में किया जा सकता है।

इस मामले में इलेक्ट्रॉनिक कचरा बहुत उपयोगी माना जा रहा है क्योंकि इलेक्ट्रॉनिक सामान बनाने में स्टील व तांबे जैसी कीमती धातुओं का प्रयोग बहुतायत से होता है। यूरोप की एक कंपनी 'आररुबिस' प्रतिदिन डेढ़ सौ टन इलेक्ट्रॉनिक कचरे से तांबे व स्टील सहित कई अन्य बहुमूल्य धातुएं बीनती है जिनकी रिसाइकिलिंग की जाती है। यहां सालाना करीब 41 हजार टन तांबे का उत्पादन होता है। कबाड़ से निकले इस तांबे को रिसाइकिल कर इलेक्ट्रॉनिक उत्पाद बनाने के अलावा कई अन्य क्षेत्रों में इस्तेमाल किया जाता है। तांबा खनिज है, इसकी खदाने चिली, ब्रजील व कनाडा आदि में हैं, लेकिन यूरोप की यह कंपनी रिसाइकिलिंग के जरिए देश-दुनिया में तांबे की मांग को काफी हद तक पूरा करती है।

कचरे को यदि बिखरा दिया जाये तो गंदगी व दुर्गंध फैलती है जो किसी को भी अच्छी नहीं लगती, लेकिन कचरे का कबाड़ भी कीमती हो सकता है यदि हम सब इसका सही नियोजन करने में अपना अमूल्य सहयोग प्रदान करें। जरुरी यह है कि विभिन्न तरह के कचरे को अलग-अलग भागों में बांटकर उसका सही नियोजन किया जाये क्योंकि हर सामान की अपनी उपयोगिता है। इससे देश स्वच्छ होने के साथ-साथ इस नियोजन से समृद्ध भी हो सकता है।

इसका एक प्रयास कचरे की मात्रा को कम करने के लिए भी होना चाहिये; जैसे प्लास्टिक का कम से कम इस्तेमाल हो। स्वास्थ्य सेवा के क्षेत्र में डिस्पोजेबल सिरिंज, कैप्स्यूल का आवरण और श्रवण यंत्र के लिए प्लास्टिक जरुरी है, उसका कोई विकल्प नही है जो प्लास्टिक जितना सस्ता और प्रभावी हो, लेकिन ऐसे कई क्षेत्र हैं जहां प्लास्टिक के इस्तेमाल को कम किया

जा सकता है। कुल खपत का 35 फीसदी प्लास्टिक पैकेजिंग उद्योग में इस्तेमाल किया जाता है। पारंपरिक पैकेजिंग सामग्री जैसे जूट, कपड़ा, कॉटन आदि को चलन में लाकर प्लास्टिक के उपयोग को कम किया जा सकता है। इसी तरह पुराने कंप्यूटरों व मोबाइलों के आयात पर रोक तथा बेकार उपकरणों के निस्तारण के लिए उसके विभिन्न अवयवों को अलग करने की व्यवस्था बेहद जरुरी है। वाहनों के नकली या घटिया पार्ट्स की बिक्री पर कड़ाई से रोक भी कचरे को रोकने में मददगार हो सकती है।

इसी के साथ यदि कचरा नियंत्रण व उसके निस्तारण की शिक्षा स्कूली स्तर पर अनिवार्य कर दी जाये तो हमारी भावी पीढ़ियां भी इसके बारे में सतर्क ओर सावधान हो सकती हैं और इसके निस्तारण के लिए नई तकनीकों का आविष्कार भी कर सकती हैं। आज समाज की यह आवश्यकता है कचरे को कम करने और उसके उचित निस्तारण के लिए दीर्घकालीन योजना के निर्माण को उच्च प्राथमिकता दी जाये, ताकि घर-परिवेश स्वच्छ होने के साथ-साथ हमारा समाज व वातावरण भी साफ-सुथरा हो सके।

संदर्भ सूची

नेशनल इनवायरमेंट इंजीनियरिंग रिसर्च इन्स्टीट्यूट, नागपुर की रिपोर्ट
दैनिक भास्कर
ग्रीन केयर सोसायटी, 9 मई 2012
अखंड ज्योति, अप्रैल 2015
अखंड ज्योति, जनवरी 2015
इंडिया वाटर पोर्टल सर्वे रिपोर्ट
विकिपीडिया मुक्त ज्ञानकोश

लेखकों के लिए निर्देश

शोधपत्र का अनुरोध

लेखक अपना शोधपत्र डॉ. मनीषा शुक्ला ,प्रधान सम्पादिका आन्वीक्षिकी भारतीय शोध पत्रिका को ई-मेल पर प्रेषित करें। (maneeshashukla76@rediffmail.com)

प्राप्त शोधपत्र पत्रिका में प्रकाशन के पूर्व पुनर्निरीक्षित किये जायेंगे। स्वीकृत शोधपत्र कहीं और प्रकाशित नहीं होना चाहिए और न ही उस शोधपत्र का कोई भी भाग प्रधान सम्पादिका के अनुमति के बिना कहीं और प्रकाशित किया जा सकता है। कृपया अपने शोधपत्र की पाण्डुलिपि निम्न भागों में तैयार करें,शीर्षक ;सारांश ;पाण्डुलिपि ;पुस्तक संदर्भ सूची। कृपया पुनर्निरीक्षण की गुणवत्ता में सहायता करने हेतु अपना नाम पता पाण्डुलिपि पर न दें।

शीर्षक :शीर्षक पाण्डुलिपि पर अवश्य दें,किन्तु अपना पूरा नाम,पता,संस्था जहाँ पर अध्ययन अथवा अध्यापन कार्य सम्पादित किया गया हो, आपका विषय,दूरभाष अथवा मोबाइल,फैक्स,ई-मेल पत्राचार हेतु अलग पृष्ठ पर अवश्य दें। उपर्युक्त तथ्य आपके शोधपत्र के शब्द सीमा के अन्तर्गत ही माना जायेगा।

सारांश :कृपया शोधपत्र का सारांश 120 शब्दों में दें।

पाण्डुलिपि :इसके अन्तर्गत मुख्य पाठ्य सामग्री होगी ; जो 5 से 10 पृष्ठ तक होनी चाहिये। शोधपत्र 10 पृष्ठ से (सारांश,शब्द संक्षेप,संदर्भ सूची समेत)अधिक प्रकाशन हेतु स्वीकार नहीं किया जायेगा। अन्यथा वृहद् शोधपत्र(10 पृष्ठ से अधिक) प्रकाशन में देर भी हो सकती है। लेखक को यह बात स्वीकार होनी चाहिए कि शोधपत्र पुनर्निरीक्षण के दौरान किये गये संशोधन उन्हें मान्य होंगे। शोधपत्र प्रकाशन के दौरान त्रुटि की सम्भावना न बने इसका पूरा ध्यान रखा जाता है फिर भी कोई त्रुटि पाये जाने पर लेखक संशोधित रीप्रिंट प्राप्त कर सकता है ; पत्रिका में संशोधन की व्यवस्था नहीं है।

सन्दर्भ वर्णमालाक्रामानुसार :शोधपत्र के समापन पर कृपया संदर्भ वर्णमाला क्रमानुसार दें। पत्रिका का वर्ष,लेखक, पृष्ठ संख्या,भाग इत्यादि विस्तार से दें। पुस्तक शीर्षक या पत्रिका शीर्षक इटालिक दें।

पुस्तक :प्रकाशक का नाम,संस्करण संख्या,प्रकाशन वर्ष,लेखक का नाम,पुस्तक का नाम,पृष्ठ संख्या

पत्रिका :पत्रिका का नाम,लेख का शीर्षक,लेखक का नाम,प्रकाशक का नाम,अंक संख्या/माह,वार्षिक अथवा अर्द्धवार्षिक अथवा मासिक जो भी हो स्पष्ट करें।

समाचार पत्र :प्रकाशक,तिथि,सन् ,पृष्ठ संख्या,

इण्टरनेट :वेबसाइड,पृष्ठ संख्या,मुख्य शीर्षक,अन्त: शीर्षक।

मानचित्र एवं सारणी :मानचित्र एवं सारणी अथवा चित्र शोधपत्र की समाप्ति के अन्त में दें। यह ब्लैक एण्ड व्हाइट ही होना चाहिए। इसका स्पष्ट संकेत पाण्डुलिपि में दें(उदाहरण सारणी संख्या 1)

विशेष :कृपया अपना शोधपत्र ई-मेल करने के बाद डॉक से अवश्य भेजें। अपने शोधपत्र के साथ-साथ अपना वायोडाटा, फोटो,स्वपता लिखा लिफाफा(25 रू के टिकट सहित)भेजें। शोधपत्र यदि हिन्दी भाषा में है तो ए.पी.एस प्रियंका रोमन(ए.पी.एस. कार्पोरेट 2000++)में तैयार सी.डी के साथ दें। शोधपत्र प्राप्त होने के एक सप्ताह के अन्दर लेखक को स्वीकृति पत्र प्रेषित कर दिया जायेगा। ई-मेल से प्राप्त शोधपत्र हेतु ई-मेल से स्वीकृति भेजी जायेगी। शोधपत्र प्रेषित करने के पूर्व प्रधान सम्पादिका से दूरभाष पर अवश्य सम्पर्क करें। सम्पादक मण्डल अथवा सलाहकार समिति में सम्मिलित करने का अंतिम निर्णय संस्था का होगा।

सदस्यों से निवेदन है कि वर्ष में 20 सदस्य पत्रिका से जोड़कर संस्था का सहयोग करें।

Other MPASVO Journals

Saarc : International Journal of Research
(Six Monthly Journal)
www.anvikshikijournal.com

Asian Journal of Modern & Ayurvedic Medical Science
(Six Monthly Journal)
www.ajmams.com

IJRA
www.anvikshikijournal.com

ISSN 0973-9777
09739777
₹ 1200/-